Chapter. 1

Date :

: प्रथम अध्याय :

: विषय-प्रवेश :

:: प्रथम अध्याय ::

: विषय - प्रवेश :

प्रास्ताविक :

कहानी का सीधा संबंध मानव-जीवन से है । संसार में शायद ही कोई ऐसा मनुष्य मिलेगा , जिसने अपने शैशव-काल में कहानी का श्रवण न किया हो । अतः हमारे यहां प्राचीन काल से कथा-साहित्य की उपलब्धि होती रही है । "पंचतंत्र " , "ह हितोपदेश " , " कथासरितसागर " , " दशकुमार चरित " , "बत्तीस पुतलियां " , " वैताल कथाएं " , "भोज-कालिदास की कथाएं " , "रामायण-महाभारत एवं पुराणों की कथाएं " , "जैनों और बौद्धों की जातक कथाएं " इत्यादि अनेकानेक कथात्मक कृतियां

हमें प्राचीन समय से उपलब्ध होती रही है । कविकुलगुरु कालिदास के "मेघदूत" काव्य में "कथा-कोविद" वृद्ध-जनों का उल्लेख मिलता है जो उदयन आदि राजाओं की कथा कहने में अत्यन्त निपुण थे । मध्यकाल में "अकबर-बिरबल की कहानियां" , सिद्धराज जयसिंह , मूलराज सोलंकी , वनराज चावड़ा , जयशिखरी , रा नवघण , रा खेंगार , राणकदेवी , जसमा ओडन , लाखा वणजारा आदि की कहानियां ; इधर मियां फुसकी की कहानियां , ईसप की कहानियां , अरेबियन नाइट्स की कहानियां , अलिफ लैला , शिरीं फरहाद , सोहिणी मेहवाल , सदेवंत सावडिंगा आदि की प्रेम-कहानियां , गुजरात में "बच्चों की मां" के नाम से विख्यात गिजुभाई बधेका की कहानियां प्राप्त होती है ; बावन वैष्णवन की वार्ता , या चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर आधारित संतों की कहानियां , राणा प्रताप , छत्रपति शिवाजी आदि वीर-पुरुषों की कहानियां भी प्राप्त होती रही है । इधर राजपाल एण्ड सन्स ने अलग-अलग देशों की तथा भारत के अलग-अलग प्रदेशों की लोककथाओं की एक श्रृंखला प्रकाशित की है । तात्पर्य अभिप्राय यह कि कहानी - साहित्य तो हमें प्राचीन काल से अद्यावधि निरंतर प्राप्त होता रहा है । किन्तु आधुनिक साहित्य के संदर्भ में आज जिसे हम "कहानी" कहते हैं , उसका उत्स उपर्युक्त कथा-साहित्य में नहीं है । वस्तुतः कहानी उपन्यास की भांति ही एक नयी विधा है जिसका प्रादुर्भाव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी के प्रभाव-स्वरूप हुआ है । अंग्रेजी में जिसे "शोर्ट स्टोरी" कहते हैं उसे ही हिन्दी में कहानी कहा गया है । प्राचीन कथा-साहित्य जहां बोधप्रधान या मनोरंजन प्रधान रहा है , वहां आधुनिक कथा-साहित्य जीवन के प्राण-प्रश्नों से टकराता रहा है । गुजराती में उसे "नवलिका" या "टुंकी वार्ता" कहा गया है । प्राचीन कथा-साहित्य वायवी , काल्पनिक एवं

चमत्कारपूर्ण घटनाओं से परिव्याप्त मिलता है , वहां आधुनिक कथा-साहित्य यथार्थ की भावभूमि पर टिका हुआ है । प्राचीन कथा-साहित्य में प्रायः पशु-पक्षियों की कहानियां रहती थीं , या फिर राजा-रानियों , राजकुमार-राजकुमारियों , मंत्री , मंत्री-पुत्र , महाजन , श्रेष्ठी कन्याओं आदि की कहानियां रहती थीं या कभी-कभी ऋषि-मुनियों तथा संतों की कहानियां उपलब्ध होती थीं । सामान्य या निम्न-वर्ग के लोग तथा उनकी समस्याएं एक सिरे से नदारद रहती थीं । सामान्य या निम्न वर्ग के लोग यदा-कदा मिल जाते हैं , परन्तु वे कहानी के केन्द्र में नहीं होते थे । वे नौकर-चाकर या गौण पात्रों के रूप में आते थे । अभिप्राय यह कि आधुनिक कहानी , अपनी प्रकृति , संस्कार , भाषा-शिल्प आदि अनेक दृष्टियों से पुरानी कथा से भिन्न पड़ती है । हममें से प्रायः सभी लोगों ने अपनी शिक्षा के दौरान अनुभव किया होगा कि प्राथमिक कक्षाओं में हम जो कहानियां पढ़ते हैं, वे भिन्न प्रकार की होती हैं और बाद में हाईस्कूल या कालेज में भाषा-साहित्य के अन्तर्गत जो कहानियां पढ़ते हैं वे बिल्कुल भिन्न प्रकार की होती हैं । अब यह तथ्य समझ में आ रहा है कि प्राथमिक शिक्षा के दरमियान हम जो पढ़ते थे उन कहानियों का संबंध प्राचीन कथा-साहित्य से था । परन्तु बाद में हाईस्कूल तथा कालेज में हम जिन कहानियों का अध्ययन करते हैं , उन कहानियों का संबंध आधुनिक कथा-साहित्य से है । एक बहुत बड़ा अंतर इन दोनों में यह भी पाया जाता है कि प्राचीन कथा-साहित्य जहां कथा-सूत्रों (स्टोरी-मोटिफ) पर आधारित था , वहां आधुनिक कथा-साहित्य साम्प्रतिक जीवनानुभवों को अपना आधार बनाता है । कथा-सूत्र नहीं , यहां जीवन-सूत्र होते हैं । अतः उसमें रोमानीपन कम और यथार्थ का पुट अधिक होता है । चूंकि हमारे शोध-प्रबंध का विषय कहानी-विधा से जुड़ा हुआ है , इस अध्याय में "विषय-प्रवेश" के रूप में हमने हिन्दी कहानी से सम्बद्ध कतिपय

मुद्दों को उठाते हुए , अन्ततः उसे दलित-विमर्श से जोड़ने का प्रयास किया है ।

पुराने कथा-साहित्य से आधुनिक कहानी का अंतर :

ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि हमारे यहां प्राचीन काल से कथा-साहित्य की प्रवृत्ति मिलती है परन्तु उसका इस आधुनिक कहानी-साहित्य से कोई खास संबंध नहीं है । इन दोनों में प्रवृत्ति एवं प्रकृति की दृष्टि से अनेक अंतर दृष्टिगोचर होते हैं । यहां संक्षेप में उन पर विचार करने का और उन्हें विश्लेषित करने का उपक्रम रखा गया है ।

§1§ पुराना कथा-साहित्य स्थूल कथावस्तु-प्रधान , मनोरंजन-प्रधान और बोध-प्रधान था ; जबकि आधुनिक कहानी-साहित्य अधिक सूक्ष्म , चरित्र-प्रधान एवं जीवन-दृष्टि संपन्न है । उसमें समकालीन जीवन के प्राण-प्रश्नों को छूने का बड़ा भारी माद्दा है ।

§2§ प्राचीन कहानी आदर्शमूलक थी , जबकि आधुनिक कहानी यथार्थ अनुभवों - मूलक है । यथार्थ जीवनानुभवों की प्रस्तुति उसकी एक मुख्य प्रवृत्ति है ।

§3§ प्राचीन कहानी का परिवेश अधिकांशतः सामन्तकालीन था । वह सामन्तकालीन जीवन-मूल्यों पर आधारित थी । दूसरी ओर आधुनिक कहानी का परिवेश लोकतांत्रिक समाज-रचना है । फलतः प्राचीन कथा-साहित्य में जहां केवल राजा-रानियों की कहानियां उपलब्ध होती थीं , वहां आधुनिक कहानी में निम्न श्रेणी के सामान्य मेहनतकश लोगों को केन्द्रस्थ किया गया है । यह जितनी उच्चवर्गीय सेठ जगमोहन की कहानी हो सकती है , उतनी ही माधव और घीसू की भी हो सकती है , बल्कि उनको ही यहां केन्द्र में स्थान मिला है ।

§4§ प्राचान कथा-साहित्य में वायवी , अतिमानवीय और चमत्कारपूर्ण घटनाओं को स्थान दिया जाता था । वहां मनुष्य अचानक अदृश्य , कभी किसी वाहन पर सवार होकर हजारों मील की यात्रा कुछेक क्षणों में कर लेता , पशु-पक्षी भी वार्तालाप करते और उनके इस वार्तालाप को मनुष्य भी सुनते और समझते । ये और ऐसी अनेकों अजीबोगरीब घटनाओं का उनमें समावेश होता था । दूसरी ओर आज साहित्य में जिसे कहानी कहा जाता है उसकी पश्चाद्भूमें वैज्ञानिक चिंतन है । अतः यहां ऐसी कपोलकल्पित घटनाओं को कोई स्थान नहीं है । घटना की विश्वसनीयता §प्रोबेबिलीटी § पर उसमें सविशेष तवज्जो दी जाती है ।

§5§ प्राचीन कथा-साहित्य में परिवेश का तत्व नहींवत् होता था । समय और स्थान के सूक्ष्म ब्यौरे वहां अनुपस्थित रहते थे । जबकि वर्तमान कहानी-साहित्य में कहानी की जीवन्तता का एक मुख्य आधार ही उसका परिवेश है । यथार्थ परिवेश निरूपण कहानी को जीवन्तता प्रदान करता है । विश्व के अनेक कहानी-कारों की ख्याति के मूल में परिवेश का यथार्थ चित्रण ही है । आंचलिक कहानी में तो परिवेश या वातावरण उसका प्राणतत्व है । ~~ऐतिहासिक कहानी~~ ऐतिहासिक कहानी में भी देशकाल और परिवेश का सविशेष ध्यान रखा जाता है ।

§6§ प्राचीन कथा-साहित्य की भाषा भी प्रायः अलंकृत अतएव कृत्रिम होती थी । भाषा की अनेक-स्तरीयता का वहां अभाव था । निम्नवर्ग के लोग और स्त्रियां वहां प्राकृत या अपभ्रंश बोलती थी , दूसरी ओर उच्च-वर्ण के लोग शुद्ध संस्कृत का प्रयोग करते थे । दूसरे शब्दों में यहां भी चतुर्वर्ण-व्यवस्था कायम थी । आधुनिक कहानी में भाषागत भिन्नता ग्रामीण या शहरी परिवेश , शिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति के आधार पर पायी

जाती है ।

§7§ प्राचीन कथा-साहित्य में कहीं तो राजाओं तक के नाम ~~हुए~~ नहीं होते थे । "एक था राजा " से काम चलाया जाता था और अगरचे होते भी थे तो बहुत सामान्यीकृत होते , जैसे राजा विक्रम , भोज , उदयन आदि । और कहीं-कहीं पशु-पक्षियों और जीव-जंतु तक के नाम होते , जैसे ~~हिरामन~~ हिरामन नामक तोता , ~~चित्रग्रीव~~ चित्रग्रीव नामक कबूतर , झूतकू नामक चींटी आदि-आदि ।

§8§ प्राचीन कथा-साहित्य कथा-सूत्रों पर आधारित था । यदि आप चालीस-पचास कहानियों को सुनें तो बहुत-से कथा-सूत्र § स्टोरी-मोटिफ्स § आपको मिल जायेंगे । उदाहरणतया राजा के या तो तीन , चार या सात रानियां होंगी , इनमें कोई रानी अतिप्रिय होगी और कोई अप्रिय या कमप्रिय होगी । राजा का अप्रिय रानी के साथ का व्यवहार बहुत ~~ठण्ड~~ ठण्डा होगा । राजा संतान-प्राप्ति के लिए जंगल में तप करने जायेगा और तब अधिकांश कहानियों में आपको मिलेगा कि वह कोई पुराना शिवालय ही होगा । यहां तक कि हमारा प्रथम महाकाव्य -- रामायण -- भी इस प्रकार के कथा-सूत्रों पर आधारित है । वहां तप के स्थान पर "पुत्रेष्टि" यज्ञ की बात आती है । दूसरी ओर हमारी आज की कहानी कथा-सूत्रों पर नहीं , प्रत्युत जीवन-सूत्रों पर चलती है । जीवन के प्राण-प्रश्नों की उसमें चर्चा होती है ।

§8§ प्राचीन कथा-साहित्य के नायक उच्चवर्गीय या देवता होते थे , कोई सामान्य क्षुल्लक प्रकार का व्यक्ति या मनुष्य उसका नायक नहीं हो सकता था । जबकि आधुनिक कहानी आम मनुष्य को केन्द्र में लेकर चलती है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आधुनिक कहानी आधुनिक युग की देन है । अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति में पुरानी कहानी से वह हर तरह से अलग है । भाषा , शिल्प , वस्तु आदि कई दृष्टियों से पुरानी कहानी से वह अलग है । उस पर अंग्रेजी कहानी का काफी प्रभाव है ।

हिन्दी कहानी : परिभाषा और स्वरूप :

कहानी में जीवन के किसी एक मार्मिक प्रसंग का आकलन होता है । आज की कहानी का महत्व चरित्र-चित्रण , यथार्थ - परिवेश निरूपण , भावों के उतार-चढ़ाव , पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व , विचारों के विश्लेषण तथा समस्याओं के उद्घाटन और उनके हल इत्यादि में देखा जा सकता है । हृदयेश या प्रसादजी जैसे कुछेक कहानीकार हैं जिनकी कहानियों में कादम्बरी या दशकुमार चरित की-सी अलंकार-प्रियता मिल सकती है , अन्यथा आधुनिक कहानी का गौरव उसके सादेपन में है । परन्तु कथा की यह सादगी , किसी दरिद्र की कलाहीन सादगी नहीं है । सादगी में ही उसकी कला सविशेष निखरती है । अब कहानी केवल विवरण पर आधारित नहीं होती । वह वस्तु , चरित्र , कथोपकथन , परिवेश एवं वैचारिक विश्लेषण आदि की यथार्थता पर आधारित होती है । आधुनिक कहानी में इधर घटना-क्रम का भी महत्व कम होता जा रहा है । वास्तव में यहाँ घटनाएं भावों और विचारों के लिए "अरगनी" का काम देती हैं । और जिस तरह "अरगनी" अब कम होते-होते कहीं एक खूंटी-मात्र रह गयी है , उसी तरह आधुनिकतम कहानी में स्थूल घटनाओं का लोप हो गया है । जैनेन्द्र , निर्मल वर्मा , अज्ञेय प्रभृति कहानीकारों में कहानी क्षेत्र के घटना-लोप की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है ।

उपन्यास की भाँति कहानी का स्वरूप भी बड़ा ही लचीला है । और प्रतिदिन उसका स्वरूप बदल रहा है । इसलिए कहानी को परिभाषित करना बिहारी की नायिका की तस्वीर खींचने के समान दुर्लभ होता जा रहा है । एक गीत में कहीं कहा गया है — " तस्वीर बनाता हूं , तस्वीर नहीं बनती " , बिलकुल इसी तरह कहानी की भी कोई संपूर्ण तस्वीर नहीं बन पा रही है । कहानी को परिभाषित करने का प्रयत्न अनेकों ने किया है , परन्तु उसको पूर्णरूपेण परिभाषित कोई भी नहीं कर पाया है । इसलिए कुछ आलोचकों ने तो परेशान होकर संक्षिप्तता या लाघवता को ही उसका एकमात्र लक्षण निश्चित किया है । अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार एच.जी वेल्स ने कहानी को ऐसी कथा कहा है जिसे एक घण्टे में समाप्त किया जा सके — " फिक्शन मेंट कैन बी रेड इन वन अवर. " । अंग्रेजी -साहित्य में अमरीकी लेखक एडगर एलन पो (सन् 1809-1849) को आधुनिक कहानी का जन्मदाता कहा जाता है । उन्होंने कहानी की जो परिभाषा दी है , वह इस प्रकार है —

" ए शोर्ट स्टोरी इज़ नैरेटिव शोर्ट इनफ टु बी रेड इन ए सिंगल सिटिंग , इज रिटन टु मेक एन इम्प्रेशन आन द रीडर, एक्सक्लुडिंग ओल मेट डज नोट फोरवर्ड मेट इम्प्रेशन , कम्पलीट एण्ड फाइनल इन इट्सेल्फ . " ।

अर्थात् कहानी एक ऐसी कथा है जो इतनी छोटी होती है कि जिसे पाठक चाहे तो एक ही बैठक में पढ़ सकता है । वह पाठक के मस्तिष्क पर कोई एक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए लिखी जाती है , अतः उसमें से उन तमाम बातों को बहिष्कृत किया जाता है जो उस प्रभाव-विशेष को अग्रसर करने में सहायक न होती हो ।

अंग्रेजी के एक अन्य आलोचक सर ह्यू वाल पाल ने कहानी की जो परिभाषा दी है, वह भी विचारणीय है। उनके अनुसार कहानी में कहानीपन होना चाहिए। अर्थात् उसमें घटित होने वाली वस्तुओं का यथार्थ लेखाजोखा होना चाहिए। वह घटना आकस्मिकतापूर्वक हो। क्षिप्र गति के साथ अपेक्षित विकास की संभावना हो और उसमें कौतूहल का तत्व भी हो। कहानी में चरम बिन्दु का होना आवश्यक है और कहानी को चाहिए कि वह पाठक को एक संतोषजनक अन्त तक ले जाए। यथा —

" एशोर्ट स्टोरी इज बी स्टोरी, ए रेकोर्ड आफ फुल आफ इन्सिडेण्ट्स एण्ड एक्सीडेण्ट्स, स्विफ्ट मोमेण्ट्स, एन एक्सपेक्टेड डेवेलोपमेण्ट लीडिंग थ्रू सस्पेन्स टु ए क्लाइमेक्स एण्ड ए सतिसफाइंग डेन्यूमा." [2]

मेथ्यु आर्नोल्ड ने काव्य को जीवन की आलोचना कहा है। उपन्यास की भांति कहानी भी आर्नोल्ड के इस कथन के अधिक करीब है। कहानी भी उपन्यास की भांति कही जाती है और उसका भी सम्बन्ध प्रायः भूतकाल से रहता है। नाटक में भूत को वर्तमान में घटित होते हुए बताते हैं, परन्तु उपन्यास और कहानी में प्रायः अतीत की बात को घटित होते हुए दिखाया जाता है। भविष्य की पृष्ठभूमि में कहानी का गठन हो सकता है, परन्तु वहां भी लेखक अपने मस्तिष्क में कहानी को अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा पहले से बिठा लेता है।

एक परिभाषा के अनुसार कहानी को "जीवन का स्नेप-शोट" कहा गया है। उपन्यास में अनेक घटनाएं होती हैं जबकि कहानी में किसी एक मार्मिक घटना को लिया जाता है। एक होता है "वीडियो" जिसमें सबकुछ घटित होते हुए बताया

जाता है, और एक होता है "स्नेप" या "फोटो" जो किसी खास प्रसंग-विशेष पर खींचा जाता है। कहानी को इसीलिए "स्नेप-शोट आफ लाइफ" ××× कहा गया है।

उपन्यास और कहानी का अंतर :

उपन्यास और कहानी दोनों कथा-साहित्य के ही प्रकार हैं। और दोनों के तत्व भी करीब-करीब समान हैं, तथापि रूपबंध की दृष्टि से दोनों दो भिन्न साहित्य-रूप हैं। उपन्यास में जहां जीवन के अनेक प्रसंगों का आलेखन होता है, वहां कहानी का फलक अत्यन्त सीमित होता है। अधिकांशतः उसमें जीवन के किसी एक मार्मिक प्रसंग को आकलित किया जाता है। कदाचित् इसीलिए उसको जीवन का "स्नेप"शोट" कहा गया है। एकांकी के संदर्भ में कहा गया है कि उसमें एक प्रसंग, एक चोट, एक भाव, एक विचार, एक उद्देश्य का प्राधान्य रहता है। कहानी पर भी हम यह बात लागू कर सकते हैं। अपनी मर्मस्पर्शिता एवं प्रभावोत्पादकता में कहानी एकांकी के अधिक समीप होती है। उपन्यास में यदि किसी पात्र के भावों या विचारों में कोई परिवर्तन दिखाया जाता है तो उसके लिए अनेक प्रसंग और कारणों की सृष्टि होती है, परन्तु कहानी का फलक सीमित होने के कारण उसमें हृदय-परिवर्तन या ××× विचार-परिवर्तन के लिए किसी एक मार्मिक प्रसंग की उद्भावना की जाती है। इस प्रकार कहानीकार "सुनार की सौ में नहीं, अपितु ××× लुहार की एक में" विश्वास करता है।

उपन्यास और कहानी में एक स्थूल अंतर तो आकार का होता है। कहानी एक पृष्ठ से लेकर 70-80 पृष्ठों की हो सकती है। जैनेन्द्रजी ने कुछ इस तरह की कहानियां लिखी हैं। दूसरी ओर छोटे-से - छोटा उपन्यास 70-80 पृष्ठों का होता है। उपन्यास की आकार-मर्यादा 70-80 पृष्ठों से लेकर हजारों पृष्ठों तक की हो सकती है।

इस प्रकार देखा जाए तो कहानी की जो गुरुत्तम मर्यादा है, वह उपन्यास की लघुत्तम मर्यादा है।

आकार की भाँति पात्रालेखन में भी एक स्थूल अंतर पाया जाता है। उपन्यास में तीन-चार पात्रों से लेकर हजारों पात्र रह सकते हैं। देवकीनंदन खत्री कृत अपने उपन्यास "चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता सन्तति" में हजारों पात्र हैं, परन्तु कहानी कितनी भी बड़ी क्यों न हो उसमें दश-पन्द्रह से अधिक पात्र नहीं हो सकते। यह तो उपन्यास और कहानी के बीच का मोटा और स्थूल अंतर हुआ। आकार के आधार पर हम उपन्यास को बड़ी कहानी और कहानी को छोटा उपन्यास नहीं कह सकते। दोनों के बीच प्रकृति एवं प्रवृत्ति का भी अंतर है। दोनों के अंतर को स्पष्ट करने हेतु बाबू गुलाबराय ने एक बड़ा मनोरंजक उदाहरण दिया है। उन्होंने बताया है कि केवल चौपाया होने के आधार पर मेंढक को "छोटा बैल" और बैल को "बड़ा मेंढक" नहीं कहा जा सकता। बैल चारों पैरों पर समान वजन देते हुए चलता है, जबकि मेंढक फुदक-फुदक कर चलता है। उसी प्रकार उपन्यास में जीवन के की अनेकरूपता के दर्शन होते हैं, जबकि कहानी में किसी एक पक्ष को उजागर किया जाता है। अंत निर्दिष्ट किया गया है कि उपन्यास और कहानी के तत्व समान हैं, परन्तु उपन्यास में जहां इन सभी तत्वों का समावेश कमो-बेश रूप में होता है, वहां कहानी में किसी एक तत्व को प्राधान्य दिया जाता है। यदि महाभारत के रूपक का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि उपन्यासकार की दृष्टि "भीम" भीम-दृष्टि" होती है, जो पक्षी के अतिरिक्त आकाश, बादल, वृक्ष, पत्ते, रसोई-घर, लड्डू आदि सभी देखती है; जबकि कहानीकार की दृष्टि "अर्जुन-दृष्टि" है, जो केवल लक्ष्य को ही देखती है।[3] अंत जो कहानी की परिभाषा दी गई है उसमें भी यही कहा गया है कि कहानी पाठक के मस्तिष्क में कोई एक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए

लिखी जाती है और उसमें से उन तमाम अनिवार्य चीज़ों को बहिष्कृत किया जाता है जो उस प्रभाव को द्रुढ़ीभूत करने में सहायक नहीं होतीं । उपन्यास और कहानी में तात्विक दृष्टि से समानता होती है , परन्तु उपन्यास में जहां सभी तत्वों को अन्तर्निहित किया जाता है , वहां कहानी में किसी एक तत्व का प्राधान्य रहता है । कहानी , कथोपकथन , परिवेश या किसी भाव-स्थिति पर निर्भर हो सकती है । प्रारंभ में कहानी कथावस्तु -प्रधान थी , फिर चरित्र-प्रधान हो गई । उसके बाद तो ऐसी स्थिति वहां तक पहुंची कि कहानी किसी एक भाव-स्थिति या मन-स्थिति मात्र को लेकर भी लिखी जाती रही ।

हिन्दी में कहानी का विकास :

हमारे यहां कहानियां तो प्राचीन काल से मिलती हैं , परन्तु उन कहानियों में और इधर आधुनिक काल में जिसे "कहानी" की संज्ञा के अन्तर्गत रखा गया है , उनमें प्रवृत्ति और प्रकृतिगत अंतर दृष्टिगत होता है , जिसे पूर्ववर्ती पृष्ठों में स्पष्ट किया गया है । आधुनिक कहानी का प्रारंभ भारतेन्दु युग से माना जाता है । उस समय कलात्मक कहानी का आरंभ नहीं हुआ था । कहानियों के नाम पर कुछ संग्रह प्रकाशित हुए थे । इनमें "मनोहर कहानियां " में लगभग 100 कहानियां प्रकाशित हुई थीं । इनका संपादन सन् 1880 में मुंशी नवलकिशोर ने किया था , परन्तु इनके लेखक अलग-अलग हैं । शेष तीन कहानी संग्रहों में संकलित कहानियां क्रमशः अम्बिकादत्त व्यास , राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और बण्डी-प्रसाद सिंह द्वारा लिखित हैं । ये कहानी संग्रह लगभग सन् 1886 और 1888 के बीच प्रकाशित हैं । ये कहानियां प्रायः इतिहास-पुराण कथित शिक्षा-नीति प्रधान या हास्यप्रधान हैं । वस्तुतः कहानी के नाम पर यहां जिन स्वप्न कथाओं को लिया गया है

शिल्प की दृष्टि से उन्हें कथात्मक निबंधों की कोटि में रखा जा सकता है । इनका आरंभ तो कथात्मक पद्धति से होता है, परन्तु बाद में लेखक प्रायः मौका मिलते ही तत्कालीन समाज की विकृतियों और विद्रूपताओं का वर्णन करना प्रारंभ कर देता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और बालकृष्ण भट्ट की स्वप्न-कथाएं कहानी और निबंध के बीच की रचनाएं हैं ।

कहानियों के अभाव में भारतेंन्दु युग का पाठक लघु उपन्यासों, मध्यकालीन प्रेमकथाओं के गद्यात्मक रूपान्तरों, "बेताल पचीसी" और "सिंहासन बत्तीसी" की कहानियों, रसात्मक लोक-कथाओं आदि से अपने वाचन-रस की तृप्ति कर लेता था । इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है कि अंग्रेजी की मासिक पत्रिकाओं में जैसी छोटी-छोटी आख्यायिकाएं या कहानियां निकला करती हैं, वैसी कहानियों की रचना "गल्प" नाम से बंग भाषा में चल पड़ी थीं । ये कहानियां जीवन के बड़े मार्मिक और भाव-व्यंजक खण्ड-चित्रों के रूप में होती थीं । ..."सरस्वती" पत्रिका में इस प्रकार की छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे हैं । [4] अभिप्राय यह कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित "सरस्वती" पत्रिका के प्रकाशन के पूर्व आधुनिक कलात्मक हिन्दी कहानियों का अस्तित्व नहीं था ।

सन् 1900 के आसपास से हिन्दी कहानी - लेखन शुरू हुआ । उसके प्रारंभिक लेखकों में पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, गिरिजाकुमार घोष, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, मास्टर भगवानदीन तथा बंग महिला आदि हैं । इन लेखकों की कहानियों में कुछ तो मौलिक थीं और कुछ बंगला भाषा से अनूदित । इन कहानियों में पं. किशोरीलाल गोस्वामी कृत "इन्दुमती" और बंग महिला कृत "दुलाईवाली" जैसी कहानियों को विशेष ख्याति प्राप्त हुई थी ।

वस्तुतः हिन्दी कहानी को प्रतिष्ठित करने का कार्य जयशंकर प्रसादजी ने किया था । प्रसादजी की "ग्राम" नामक कहानी उनके ही द्वारा संस्थापित "इन्दु" नामक पत्रिका में सन् 1910 में प्रकाशित हुई थी । "ग्राम" कहानी के उपरांत "आकाशदीप" , "प्रतिध्वनि" , "चित्र-मंदिर" , "पुरस्कार " आदि कहानियों ने हिन्दी कहानी के क्षेत्र में युग-परिवर्तन का कार्य किया । बाबे गुलाबराय ने इस संदर्भ में लिखा है — " उनकी कहानियों में स्वर्णिम आभा से ~~विभूषित~~ विभूषित प्राचीनता के वातावरण को उपस्थित करने के अतिरिक्त अच्छे मनोवैज्ञानिक चित्रण आए हैं । उनमें हमको बड़े सुन्दर ~~अन्तर्द्वन्द्व~~ अन्तर्द्वन्द्व दिखाई देते हैं । उनकी "पुरस्कार" नामक कहानी में राष्ट्रभक्ति और वैयक्तिक प्रेम का ~~हृष्ट~~ संघर्ष है । आत्म-बलिदान द्वारा मधुलिका इस द्वन्द्व का शमन करती है ।"[5]

उसी समय विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" कहानी के क्षेत्र में आते हैं । उपन्यास की भांति उनकी कहानियों में भी अधिकांशतः सामाजिक समस्याओं का निरूपण मिलता है । इनकी बहुत-सी कहानियों में नगरीय जीवन के अच्छे चित्र मिलते हैं । "कौशिकजी" के साथ ही साथ सुदर्शनजी का नाम भी लिया जाता है । उन्होंने अपने कथानक तत्कालीन राजनीतिक आंदोलनों से लिये हैं । उनकी "हार में जीत" नामक कहानी अत्यधिक चर्चित हुई है । हिन्दी के अधिकांश कहानी-संग्रहों में इस कहानी को देखा जा सकता है । उनकी "न्याय-मंत्री" नामक कहानी ऐतिहासिक वृतान्त पर आधारित है । उस समय इस कहानी ~~ने~~ भी काफी लोकप्रियता प्राप्त की थी । सुदर्शनजी की कहानियां प्रायः मध्यवर्गीय शहरी जीवन को लेकर चलती हैं । उस समय मुंशी प्रेमचन्द का हिन्दी कहानी जगत में प्रवेश होता है । वस्तुतः कौशिकजी , सुदर्शनजी और प्रेमचन्दजी को हिन्दी कहानी लेखकों की तत्कालीन बृहत्त्रयी में रखा गया है ।

जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी कहानी को प्रतिष्ठित करने का कार्य तो किया है, किन्तु प्रसादजी की अधिकांश कहानियां भारत के स्वर्णिम अतीत को रूपायित करती हैं। उनकी अधिकांश कहानियां वायवी और काल्पनिक परिवेश पर आधारित हैं। उसे यथार्थ की जमीन पर लाने का कार्य प्रेमचन्दजी ने किया है। ऐसा कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानी की प्राण-प्रतिष्ठा प्रेमचन्दजी के हाथों हुई है। उन्होंने सरल मुहावरेदार भाषा में ग्रामीण जीवन के बड़े अच्छे मनोरम एवं मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा साधारण मनुष्यों में भी उच्च मानवता के दर्शन कराए हैं। वस्तुतः दलित-जीवन का चित्रण सर्वप्रथम हमें प्रेमचंदजी में मिलता है। प्रेमचन्दजी ने लगभग 250 के करीब कहानियां लिखी हैं। उनकी कहानियों में विचारधारा की दृष्टि से हमें एक क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होता है। आदर्शवाद, आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से गुजरते हुए वे यथार्थवाद की यात्रा तय करते हैं। प्रारंभ में वे आर्यसमाज से प्रभावित थे। बाद में उस पर गांधीजी का प्रभाव परिलक्षित होता है। और अन्त तक आते-आते उनकी विचारधारा पूर्णरूपेण मार्क्सवादी हो गयी है। "पंच परमेश्वर", "बड़े घर की बेटी", "शतरंज के खिलाड़ी", "ईदगाह", "नशा", "अलग्योझा", "सुजान भगत", "बड़े भाई साहब", "दो बैलों की कथा", "पूस की रात", ठाकुर का कुआं", "सद्गति", "दूध का दाम", "कफन", "सौभाग्य के कोड़े", "गुल्ली-डण्डा", "सवा सेर गेहूं", सती", "मेरी पहली रचना", "मंदिर", "मंत्र", ४१ "घासवाली" आदि उनकी कुछ बहुचर्चित कहानियां हैं। एक कहानीकार के रूप में प्रेमचन्दजी की गणना विश्व के महान कथाकारों के साथ होती है, जिनमें चेखव, गोर्की, मोपांसा आदि मुख्य हैं। प्रेमचन्दजी का महत्व इसमें है कि न केवल उन्होंने कहानियां लिखीं, प्रत्युत अनेक लेखकों को उस दिशा में प्रेरित एवं अग्रसरित किया। घाटा उठाकर

भी वे "हंस" और "जागरण" जैसी पत्रिकाओं को चलाते रहे । अपने लेखन के कारण जिन पर मुकदमें चले हों, जिन पर अंग्रेज सरकार का कोप उतरा हो और जिनके प्रथम कहानी संग्रह "सोज़ेवतन" को अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया हो ऐसे लेखकों में प्रेमचन्दजी सबसे अग्रिम पंक्ति में आते हैं । इसीसे इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि उनके लेखन में कितनी "तपिश" रही होगी ।

उसी समय चण्डीप्रसाद हृदयेश भी एक कहानीकार के रूप में उभरकर आते हैं । कहानी-कला की दृष्टि से एवं भाषिक-संरचना की दृष्टि से उनकी कहानियां प्रसादजी के निकट पड़ती हैं । कई बार वे गद्य-काव्य-सी प्रतीत होती है । इनके अलावा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, अन्नपूर्णानंदजी, पी. श्रीवास्तव, भगवतीचरण वर्मा, सियारामशरण गुप्त, धनीराम "प्रेम", विनोदशंकर व्यास, पांडे बेचैन शर्मा "उग्र", उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, आदि लेखकों ने हिन्दी कहानी-लेखन के क्षेत्र में अपना विशेष योगदान दिया है ।

इसी काल-खण्ड में कुछ महिला लेखिकाएं इस क्षेत्र में पदार्पण करती हैं, जिनमें शिवरानी देवी, सुभद्राकुमारी चौहान, उषा-देवी मित्रा, चन्द्रकिरन सोनरिक्शा, कमलादेवी, चौधरानी ओमवती, तथा चन्द्रावती आदि मुख्य हैं । इन लेखिकाओं में हमें हिन्दू पारिवारिक जीवन के कुछ सुन्दर चित्र मिलते हैं ।

प्रेमचन्दजी के उपरान्त कहानी-क्षेत्र में जिनका प्रमुख योगदान है, ऐसे लेखकों में जैनेन्द्रजी, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय", यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा आदि मुख्य हैं ।

~~प्रेमचन्दजी के~~ जैनेन्द्रजी ने कहानी के समूचे तन्त्र को ही बदल डाला । उनकी कहानियों में मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति मिलती है । ऐसा कहा जाता है कि मनोवैज्ञानिक कहानियों का सूत्रपात जैनेन्द्रजी ने

किया । उनकी कहानियों के संदर्भ में बाबू गुलाबराय लिखते हैं — "आपकी एक कहानी को पढ़कर कविवर मैथिली शरण गुप्त ने कहा था कि हिन्दी में रविबाबू और शरदबाबू हमें मिल गये । " [5] [6] जैनेन्द्रजी की कहानियों में कथानक अथवा तथ्य निरूपण का इतना महत्व नहीं, जितना कि मनोवैज्ञानिक चित्रण का होता है । फिर भी वे बीच-बीच में बड़ी तथ्यपूर्ण बातें कह जाते हैं । उनकी कहानियों पर दार्शनिकता की छाप रहती है । जैनेन्द्रजी के उपन्यासों के पात्रों की भांति उनकी कहानियों के पात्र भी असाधारण होते हैं । जैनेन्द्रजी प्रायः अपनी कहानियों में मन की शंकाओं को उद्वेलित कर देते हैं । इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जैनेन्द्रजी ने कहानी को एक नया शिल्प दिया है । "पत्नी", "जाह्नवी", "पाजेब", "ग्रामोफोन का रेकोर्ड", नीलम देश की राजकन्या" आदि कहानियों के अपने-अपने रहस्य हैं जिनमें सबकुछ कहा नहीं गया है । जैनेन्द्रजी की कहानी में बहुत कुछ अनकहा-सा रह जाता है । [7] उनकी कहानी के संदर्भ में डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने लिखा है — " जैनेन्द्र की कहानियां बेहद सहज और उन्मुक्त हैं । घरेलू जीवन की छोटी-छोटी बातें एक परिचित-से विश्वास को लेकर आगे बढ़ती हैं और फिर वातावरण पर छा जाती हैं । बड़ी समस्याओं के साथ प्रेम और नारी को जानने की जिज्ञासा जैनेन्द्र का प्रमुख स्वर है । उपन्यास की भांति जैनेन्द्र की कहानियों में भी अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता, सामूहिक नैतिकता का संघर्ष, प्रलोभन और त्याग का युद्ध, अन्तर्मुखता और आत्म-चिंतन, या तात्त्विकता का वातावरण रहता है । अतः सपाट या घटनाप्रधान कहानियों की जगह उनकी कहानियों में चिंतन और उहापोह की प्रधानता रहती है । इसके अतिरिक्त उनकी ~~इनकी~~ कहानियों में दार्शनिकता और मनः तात्त्विकता की अधिकता, कसा हुआ शिल्प, विस्तार को छोटे-छोटे संवादों में बांधने की कला, सांकेतिक व्यंजना, मन के गूढ़ स्तरों की तलाश, प्राकृतिक प्रवृत्तियों और आदर्शों की लड़ाई,

आदर्शवाद के भीतर प्रबलता के साथ आये मोह की टटोल जैसे अभि-लक्षण दृष्टिगत होते हैं ।[8]

प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के पश्चात् अज्ञेय तथा इलाचन्द्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक कहानियों को प्रस्तुत करते हुए व्यक्ति और वैयक्तिक समस्याओं को रेखांकित करने का प्रयत्न किया है । इलाचन्द्र जोशी फ्रायड , एडलर , युंग आदि मनोवैज्ञानिकों के मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धान्तों को कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं । एक प्रकार से जोशीजी की कहानियां मनोवैज्ञानिक फार्मूलाओं पर आधारित हैं । वे प्रायः व्यक्ति मन के चेतन-अवचेतन तथा उपचेतन आदि विभिन्न स्तरों को उद्घाटित करते हैं । जोशीजी में शास्त्र अधिक है , जीवन कम । अज्ञेयजी के पास विस्तृत जीवनानुभव है । उसके साथ देशी-विदेशी साहित्य का गहन और गंभीर अध्ययन उनकी जमा पूंजी है । अज्ञेयजी का कहानी-लेखन विशिष्ट व्यक्ति की स्थापना से होता है । उनकी कहानियां आत्म-चिंतन और आत्म-स्वीकृति की कहानियां हैं । "रोज" , "पठार का धीरज " , "सिग्नेलर " , "हीलीबोन की बतखें " , "पगोड़ा वृक्ष " , "जयदोल" , "शरणदाता" , "सभ्यता का एक दिन " , "ग्रेन्ग्रीन" , नारंगियां " आदि उनकी बहुचर्चित कहानियां हैं । डा. उपाध्याय उनकी कहानियों के संदर्भ में टिप्पणी देते हैं — " उनकी तमाम कहानियों में सांकेतिकता , प्रयोगात्मकता, एवं एक सूक्ष्म ढंग से विषय का प्रस्तुतिकरण होता है । जैनेन्द्र का झुकाव विचार की सहज अभिव्यक्ति पर है , तो अज्ञेय का विचार की विशिष्ट ऊंचाई पर ।"[9]

जहां जैनेन्द्र , अज्ञेय तथा इलाचन्द्र विश्लेषणपरक कहानियों को प्रस्तुत कर रहे थे , वहां यशपाल की कहानियों में हमें मार्क्सवादी दृष्टि मिलती है । वर्तमान समाज व्यवस्था की बखिया उधेड़ते हुए उन्होंने मार्क्सवादी समाज-व्यवस्था को उसके विकल्प के रूप में

प्रस्तुत करते हैं । मार्क्सवादी प्रभावों तथा यथार्थवादी चेतना का प्रत्यारोपण उनकी कहानियों की विशेषताएं हैं । "महादान" , "हलाल का टुकड़ा " , "करवा का व्रत " , " दुःख " , "परदा", आदि उनकी चर्चित कहानियां हैं । यशपालजी ने प्रवर्तमान समाज-व्यवस्था ; परंपरा , जाति , पैसा , पद और आडम्बरों से ग्रस्त मध्यवर्गीय चेतना के परत-दर-परत खोलने की चेष्टा की है ।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त अमृतराय , रांगेय राघव , अमृतलाल नागर , भगवतशरण उपाध्याय , उपेन्द्रनाथ अश्क , भगवती-चरण वर्मा आदि कहानीकारों ने सामाजिक कहानियां लिखी हैं । वस्तुतः देखा जाए तो कहानी के क्षेत्र में नयी प्रतिभाओं के सम्मुख दो प्रकाश-स्तम्भ थे — प्रयोगवादी अज्ञेय तथा मार्क्सवादी ~~xxxxxxx~~ यशपाल । यहां कहानी के उस मोड़ का प्रारंभ होता है जिसे आगे चलकर ~~xx~~ " नयी कहानी " के नाम से जाना जाता है ।

नयी कविता की भांति नयी कहानी का नामकरण भी पिछली परंपरा से उसे ~~xxxxxx~~ अलगाने के लिए किया गया । उसका प्रारंभ सन् 1950 से माना जाता है । नयी कहानी परिवेश के माध्यम से व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम से परिवेश को पाने की प्रक्रिया है । प्रत्येक कथाकार ~~xxxxxxxxxxxx~~ ने इस प्रक्रिया को अपने-अपने ढंग से ग्रहण किया है । फणीश्वरनाथ रेणु , शिवप्रसाद-सिंह , मार्कण्डेय , अवधनारायण , शैलेश मटियानी , बटरोही आदि की कहानियों में यथार्थता आंचलिक परिवेश को लेकर आयी है । इस दौर के अन्य कहानीकारों में निर्मल वर्मा , उषा प्रियंवदा, कृष्णबलदेव वैद , विजय चौहान , कमलेश्वर , मोहन राकेश , राजेन्द्र यादव , भीष्म साहनी , अमरकान्त , दूधनाथसिंह , मन्नू भंडारी , ज्ञानरंजन , रमेश बक्षी , शेखर जोशी , कमल जोशी

आदि हैं । शरद जोशी , हरिशंकर परसाई , रवीन्द्र त्यागी आदि ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने नयी कहानी को उसके व्यंग्यात्मक तेवरों के साथ प्रस्तुत किया है । नयी कहानी का एक अभिलक्षण आधुनिकता का परिवेश भी ~~xxxx~~ माना जाता है । वस्तुतः हम कह सकते हैं कि नयी कहानी में जीवन की सार्थकता की तलाश है । नयी कहानी के के संदर्भ में उपाध्यायजी लिखते हैं — " नयी कहानी ने जीवन और समाज की सारी विसंगतियों और दबावों को महसूस किया । मूल रूप से उसमें जीवन का भोगा हुआ अनुभव है । नये कहानीकारों ने जीवन की समग्रता को रूपायित करने के साथ अनुभूति की प्रामाणिकता और रचना-प्रक्रिया पर विशेष बल दिया । उसने मानवीय स्थितियों को यथार्थ ~~xxxxxxxx~~ अभिव्यक्ति प्रदान की । भीष्म साहनी की "चीफ की दावत " की मां , शरद जोशी का "तिलिस्म का बाबू" , दूधनाथ ~~xxx~~ सिंह की रम्तपाल की मां , उषा प्रियंवदा का "जिन्दगी और गुलाब का फूल " , कृष्णबलदेव वैद की "मेरा दुश्मन " का पति , निर्मल वर्मा की "परिन्दे "~~xxx~~ की लतिका और तमाम लोग अपने पात्रों के माध्यम से हमारी जिन्दगी के जाने-अनजाने पक्षों का उद्घाटन करते रहे हैं ।" [10]

नयी कहानी में ~~xxxxx~~ शाश्वत परंपरागत मूल्यों को तोड़ा गया है । बल्कि उनको अस्वीकृत भी किया गया है । अमरकान्त की "जिन्दगी और जोंकें " , जितेन्द्र की "जमीन आसमान" , राकेश की "सौदा" , राजेन्द्र यादव की "जहां लक्ष्मी कैद है " , निर्मल वर्मा की "लवर्स " आदि तमाम कहानियां देखा जाए तो प्रवर्तमान अभिशप्त जीवन की कहानियां है । इन कहानियों में लोग अपने अस्तित्व पर सोचते हैं और उसके दर्शन और चिंतन को झेलते हैं । या फिर व्यवस्था के प्रति विद्रोह करते हैं ।

~~xxxx~~ छठे छठे दशक के अन्त तथा सातवें दशक के प्रारंभ ~~xx~~ तक भारतीय स्वतंत्रता के विषय में लोगों का भ्रम टूटने लगा था । यहां

से मोहभंग की प्रक्रिया शुरू होती है । सामाजिक विषमता , उच्चवर्गीय लोगों का स्वेच्छाचार , निम्न-मध्यवर्गीय जीवन में बढ़ती हुई साधन-हीनता और असहायता , चीनी आक्रमण के कारण राष्ट्रीय गौरव का नाश , चुनाव तथा प्रशासन में भ्रष्टाचार , शिक्षा-संस्थाओं में भ्रष्टाचार जैसी घटनाओं से सातवें दशक का लेखक चिंतित मिलता है । इस दौर की कहानियों में हमें आवेश और विद्रोह की भावना मिलती है । इस बीच अकहानी का आंदोलन भी शुरू होता है । गंगा-प्रसाद विमल , रवीन्द्र कालिया , सुदर्शन चोपड़ा तथा ममता कालिया आदि लेखक कहानी के परंपरागत ढांचे को तोड़ते -मरोड़ते हैं । कहानी में कहानीपन की भी चिन्ता नहीं करते । अन्य लघु गद्य विधाएं भी यहां आकर गड्डमगड्ड हो जाती हैं । मूल्यगत स्वेच्छाचार की प्रवृत्ति को भी अकहानी में रेखांकित किया जा सकता है ।

स्वाधीनता के पश्चात् जो नयी चेतना आयी , कहानी के क्षेत्र में उसका प्रभाव सन् 1950 से दृष्टिगोचर होने लगता है । उसके बाद कहानी को लेकर कई आंदोलन चलते हैं और कहानी को कई-कई तरह के नाम दिए जाते हैं , जैसे नयी कहानी , अकहानी , साठोत्तरी कहानी , सचेतन कहानी , समान्तर कहानी , सहज कहानी, सक्रिय कहानी , अगली कहानी आदि-आदि । परन्तु इस वितंडावाद में न पड़ते हुए हम सन् 1950 के बाद की कहानी को निम्नलिखित तीन कोटियों में रख सकते हैं — (1) नयी कहानी , (2) साठोत्तरी कहानी और (3) समकालीन कहानी ।

नयी कहानी का दौर सन् 1950 से 1960 तक का माना जाता है । सन् 1960 से 1985 तक की कहानी को साठोत्तरी और सन् 1985 से अद्यावधि तक की कहानी को समकालीन कहानी कहा गया है । नयी कहानी में कहानी के पुराने तंत्र को तोड़ने का प्रयत्न हुआ है । उसके पहले की कहानी एक ढांचे में ढली हुई-सी होती थी । उसमें आदि , मध्य और अन्त ऐसे स्पष्ट विभाग

होते थे । प्रारंभ और अन्त को चमत्कारपूर्ण बनाने का सायास यत्न रहता था । कहा भी गया है — " ए शॉर्ट स्टोरी इज़ लाइक ए होर्स , व्हेर द स्टार्ट एण्ड द एण्ड काउण्ट मोस्ट . "

परन्तु नयी कहानी में ये बाध्यताएं हट जाती हैं । कुछ पुराने लेखकों में भी नयी कहानी के तत्व मिल जाते हैं । कुल मिलाकर जैनेन्द्र , अज्ञेय , यशपाल , मोहन राकेश , अमरकान्त, निर्मल वर्मा , कमलेश्वर , राजेन्द्र यादव , भीष्म साहनी , उषा प्रियंवदा , कृष्णा सोबती , मन्नू भण्डारी आदि की गणना नयी कहानी के दौर में कहानीकारों में हो सकती है । अमरकान्त की "डिप्टी कलेक्टर " , कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया " , कृष्णा सोबती की "बादलों के घेरे " , धर्मवीर भारती की "गुल की बन्नो ", फणीश्वरनाथ रेणु की "रसप्रिया" , भीष्म साहनी की "समाधि" , मार्कण्डेय की "हंसा जाय अकेला " , मोहन राकेश की "भवानी" , विष्णुप्रभाकर की " धरती घूम रही है " , अज्ञेय की "ग्रेन्ग्रिन " , उषा प्रियंवदा की " वापसी " , मन्नू भण्डारी की " यही सच है " आदि इस दौर की बहुचर्चित नयी कहानियां हैं ।

इस कहानी का अगला मोड़ साठोत्तरी हिन्दी कहानी है । सन् 1960 से लेकर 1985 तक की कहानी को हम साठोत्तरी कहानी के अन्तर्गत रखते हैं । साठोत्तरी कहानी में काल-विषयक विभावना भी अन्तर्निहित है । अतः इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि साठ के बाद की कहानी को साठोत्तरी कहा जाएगा । किन्तु इसका अर्थ यह कतई नहीं कि साठ के बाद की कोई भी कहानी को साठोत्तरी की संज्ञा दी जाए । साठोत्तरी कहानी साठ के बाद की कहानी अवश्य है किन्तु यह भी ध्यान रखना होगा कि साठ के बाद की प्रत्येक कहानी "साठोत्तरी" नहीं हो सकती । साठ के बाद की केवल उन कहानियों को साठोत्तरी कहा जा सकता है जिनमें साठोत्तरी चेतना उपलब्ध होती है । हिन्दी की साहित्यिक

समीक्षा में साठोत्तरी चेतना की विशेष रूप से चर्चा रही है । इसका अर्थ यह भी नहीं है कि "साठ" "साल" "साठ" का अंक हिन्दी साहित्य के संदर्भ में कोई शक्तवर्ती या युगान्तकारी है । साहित्य के इतिहास में ऐसा कभी नहीं होता किसी वर्ष-विशेष के बाद साहित्य की प्रवृत्ति आमूलचूल ढंग से बदल जाए ।

साहित्य में प्रवृत्तियों का विकास और विलयन मन्थर गति से होता है । कई बार तो पता भी नहीं चल पाता कि कौन-सी प्रवृत्ति कहां से शुरू हुई । तो फिर हिन्दी आलोचना में इस साठ के साल को , साठ के अंक को , क्यों इतना तूल दिया गया ? हिन्दी आलोचना में इस "साठ" के साल को मोटे तौर पर विभाजक रेखा के रूप में ग्रहण किया गया है । इधर हिन्दी साहित्य में "मोहभंग" की जो छवि है उसका आकलन साठ के बाद के साहित्य में पुष्कल परिमाण में मिलने लगता है ।

सन् 1947 में हम आज़ाद हुए । कुछ वर्ष इन्तजार में गए , किन्तु दश-पन्द्रह वर्षों तक भी कोई खास बदलाव नहीं लक्षित किया गया , तब साहित्यकारों , कवियों , कलाकारों और चिंतकों में "मोहभंग" की एक प्रक्रिया शुरू हुई । इस "मोहभंग" को साठ के बाद के कहानीकारों ने बहुत गहराई से महसूस किया और उसे उसके यथार्थ स्वरूप में कलागत निरपेक्षता के साथ प्रस्तुत किया । आदर्श का आग्रह और रोमानीपन की प्रवृत्ति कम होती गयी । लेखक की तटस्थता और निरपेक्षता पर बल दिया जाने लगा । ग्रामीण परिवेश का चित्रण भी उसके सही यथार्थ रूप में होने लगा । इस संदर्भ में डा. पारूकांत देसाई ने संकेतित किया है — " सामाजिक , राजनीतिक , वैश्विक परिस्थितियों का स्वानुभूत निरपेक्ष , यथार्थमूलक , अरोमानी

आकलन जितना इधर हो रहा है , या हुआ है , उतना पहले कभी नहीं हुआ । आधुनिक जीवन की विरूपताओं , विसंगतियों और विभीषिकाओं को साठोत्तरी रचनाकारों ने वैयक्तिक स्तर पर भोगा है और उसे कलागत निरपेक्षता के साथ अपने उपन्यासों में अंकित किया है । उपन्यास अपने प्रारंभिक रोमानीपन , भावुकता , नैतिकता, उपदेशवादिता आदि दूषणों को छोड़ता हुआ यथार्थ के नये आयामों की सृष्टि में बढ़ रहा है ।" ।।

यहां जो बात उपन्यास के संदर्भ में कही गई है , उसे कहानी के संदर्भ में भी लागू कर सकते हैं । यह ध्यान रहे कि "साठोत्तरी उपन्यासकार " ही अधिकांशतः "साठोत्तरी कहानीकार" भी हैं । ऊपर जो विवेचन दिया गया है , उसके आधार पर संक्षेपतः हम "साठोत्तरी कहानी " के अभिलक्षणों के रूप में निम्नलिखित मुद्दों को ले सकते हैं — /1/ मोहभंग की मुद्रा , /2/ यथार्थधर्मिता, /3/ आधुनिक भावबोध , /4/ कलागत निरपेक्षता एवं सूक्ष्मता , /5/ अरोमानी वृत्ति , /6/ अजनबीपन का भाव , /7/ प्रयोग-धर्मिता , /8/ व्यंग्यात्मकता , /9/ नवीन भाषिक-संरचना और /10/ पात्र-सृष्टि के संदर्भ में अनालोचनात्मक दृष्टिकोण ।

साठोत्तरी कहानीकारों में प्रायः वे ही कहानीकार हैं जो नयी कहानी को अग्रसरित कर रहे थे । उन कहानीकारों के अतिरिक्त जो कुछ अन्य नामों को जोड़ा जा सकता है उनमें अवध-xxxxxxxx नारायण मुद्गल , अशोक अग्रवाल , काशीनाथसिंह , कृष्णा अग्निहोत्री , चित्रा मुद्गल , ज्ञानरंजन , दीप्ति खंडेलवाल , दूधनाथसिंह , निरूपमा सेवती , पृथ्वीराज मौंगा , मंजुल भगत , ममता कालिया , महीपसिंह , मालती जोशी , राजी सेठ , सूर्यबालासिंह आदि कहानीकारों को साठोत्तरी कहानी लेखकों के रूप में परिगणित किया जा सकता है ।

सन् 1985 के बाद की कहानियों को समकालीन कहानी कहा जाता है । यहां पर भी वही बात लागू होगी जो साठोत्तरी कहानी के संदर्भ में कही गयी है , अर्थात् समकालीन कहानी सन् 1985 के बाद की कहानी तो होगी ही , किन्तु इधर की प्रत्येक कहानी समकालीन कहानी की संज्ञा को प्राप्त नहीं होगी । केवल उन कहानियों को समकालीन कहा जायेगा जिनमें समकालीन जीवन-बोध और विचार-बोध होगा । समकालीन कहानी में हमें कहानी-लेखकों की चार श्रेणियां उपलब्ध होती हैं — /1/ नयी कहानी आंदोलन से पूर्व के कहानीकार, /2/ नयी कहानी के हस्ताक्षर , /3/ आंदोलन-बद्ध दृष्टि से असंतृप्त लेखक तथा /4/ समकालीन कथाकारों की पीढ़ी के लेखक । [12]

प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत आनेवाले लेखकों में यशपाल , भगवतीचरण वर्मा , अमृतलाल नागर , उपेन्द्रनाथ अश्क , विष्णु प्रभाकर आदि हैं । दूसरे वर्ग में निर्मल वर्मा , भैरवप्रसाद गुप्त , ~~भीष्म~~ भीष्म साहनी , मार्कण्डेय , अमरकान्त , भीमसेन त्यागी , शिवप्रसाद सिंह , कमलेश्वर , मन्नू भण्डारी आदि लेखक आते हैं । तीसरी श्रेणी में वे कथाकार आते हैं जो सातवें , आठवें तथा नौवें दशक के कहानी आंदोलनों से असंतृप्त रहे हैं , और जो इन तमाम वादों-विवादों से परे रहकर केवल अपने " कहानीकार-धर्म " को निभाते रहे हैं । ऐसे लेखकों में चन्द्रकिरण सोनरिक्शा , शशिप्रभा शास्त्री , द्विजेन्द्रनाथ मिश्र , राधाकृष्ण , ब्रह्मदत्त तथा शैलेश मटियानी आदि हैं । चौथी श्रेणी में समकालीन नये कथाकारों की पीढ़ी आती है जिनमें ज्ञानरंजन , दूधनाथ सिंह , काशीनाथ सिंह , ममता कालिया , महेन्द्र भल्ला , इसराइल , इब्राहीम शरीफ , कृष्णा अग्निहोत्री , गोविन्द मिश्र , धर्मेन्द्र गुप्ता , निरूपमा सेवती , पृथ्वीराज मौंगा , बदीउज्जमां , मधुकर सिंह , मणि मधुकर , मृदुला गर्ग , दीप्ति खंडेलवाल , राजी सेठ , राकेश वत्स , बटरोही , रमेशचन्द्र शाह , विजय चौहान, श्रवणकुमार , स्वदेश दीपक , से सुरेश उनियाल , हिमांशु जोशी ,

चित्रा मुद्गल , राजीव , उदयप्रकाश , ओमप्रकाश वाल्मीकि , मोहन-दास नैमिशराय , नासिरा शर्मा , मैत्रेयी पुष्पा , अलका सरावगी , कुसुम अंसल , गगन गिल , मंजुल भगत , सूर्यबाला सिंह , मेहरून्निसा परवेज , मृणाल पाण्डे , कुसुम वियोगी , रमणिका गुप्ता , असगर वजाहत प्रभृति के नाम रेखांकित कर सकते हैं । 13

समकालीन कहानी में हमें यथार्थ का बहुआयामी चित्रण मिलता है । जीवन की कोई भी समस्या अब कहानी से अछूती नहीं रह गयी है । वैज्ञानिकीकरण , औद्योगिकीकरण , भूमंडलीकरण , तकनीकी विकास , सोवियेट सत्ता का ह्रास , एकध्रुवीकरण आदि के कारण जिन स्थितियों का निर्माण हुआ है उनका यथार्थ चित्रण इन कहानियों में हुआ है । इन कहानियों में पूंजीवादी अर्थतंत्र के भयावह और त्रासद परिणाम , नैतिक रूढ़ियों और मान्यताओं का विघटन , महानगरीय तथा औद्योगिक बस्तियों की समस्याएं , भ्रष्ट राजनीतिक , सामाजिक , प्रशासनिक व्यवस्था ; और उसे बदल डालने की व्यग्रता , कामकाजी महिलाओं की बदलती हुई स्थिति , नारी में आधुनिकता और पुरातनता का द्वन्द्व , नारी में स्वतंत्रता और परिवार-प्रतिश्रुतता का द्वन्द्व , युवा-आक्रोश , शिक्षित बेरोजगारी तथा उसके भयावह परिणाम , फ्रस्ट्रेशन तथा कुण्ठाएं , प्रतिभाहंता प्रवृत्तियां , भ्रष्ट नौकरशाही, भ्रष्ट दफ्तरी माहौल आदि का बेबाक , निर्मम , निरपेक्ष , कटु-तिक्त चित्रण हुआ है ।

समकालीन कहानी के संदर्भ× संदर्भ में डा. पुष्पपाल सिंह अपनी आलोचनात्मक टिप्पणी देते हुए कहते हैं — " समकालीन कहानी की भाषा और शिल्प अत्यन्त समृद्ध है । इस कहानी में भाषा को जीवन के निकट ले जाकर इसे कहानी-विधा के अनुरूप सहज और स्वाभाविक रूप प्रदान कर उसकी सम्प्रेषण क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि की है । इसे हम भाषा की सर्वथा नयी तराश कह

सकते हैं । गद्य भाषा की सहजता में जीवनधर्मी गंध कितनी अर्थ-क्षमता भर सकती है वर्तमान कहानी-भाषा इसका प्रमाण है । शिल्प की दृष्टि से भी समकालीन कहानी अत्यन्त समृद्ध हो गयी है । उसमें व्यंग्य , फन्तासी , लोककथा , पौराणिक कथाओं के नूतन संदर्भ तथा गद्य की अन्य अनेक विधाओं — एकांकी , निबंध , रिपोर्ताज — आदि भी सहजता से समा गये हैं ।" [14]

कहानी और यथार्थ :

प्राचीन कहानी और आधुनिक कहानी की एक व्यावर्तक सीमा-रेखा यह भी है कि जहां प्राचीन कहानी केवल वायवी वा काल्पनिक होती थी , वहां आधुनिक कहानी में यथार्थ का पुट होता है । जिस प्रकार उपन्यास को यथार्थधर्मी विधा माना गया है , ठीक उसी अर्थ में और उतनी हद तक कहानी को हम यथार्थधर्मी नहीं कह सकते , क्योंकि कहानी कभी-कभी यथार्थ को विस्मृत कर कल्पना की ओर अग्रसरित हो सकती है । यद्यपि वहां भी वह नितांत यथार्थ ~~के~~ की डोर को छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकती । यथार्थ का कुछ-न-कुछ अंश उसमें निहित रहता है । अभिप्राय यह कि यथार्थ के साथ-साथ कहानी में कल्पना का भी पुट रह सकता है । इस अर्थ में कहानी कई बार कविता के सन्निकट पड़ सकती है । हिन्दी कहानी साहित्य पर यदि एक विहंगम दृष्टिपात किया जाए तो राजाराधिकारमणप्रसाद सिंह , ठाकुर जगमोहन सिंह , जयशंकर प्रसाद , हृदयेश , जैनेन्द्र आदि कुछेक कहानीकारों को छोड़कर अधिकांश कहानी-लेखकों ने यथार्थपरक , वस्तुनिष्ठ कहानियां लिखी हैं । प्रेमचन्द की कहानियों ~~के~~ में तो तत्कालीन समाज का एक सम्पूर्ण परिदृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित होता है । साठोत्तर और समकालीन कहानी में भी कहानी लेखकों का विशेष आग्रह समसामयिक यथार्थ और समसामयिक सामाजिक , पारिवारिक , राजनीतिक

यथार्थ-बोध के बेबाक, बेलौस, निर्मम चित्रण की ओर रहा है।

जहां तक आधुनिक साहित्य का सवाल है उसके अनेकानेक मुद्दे सीधे नवजागरण से सम्बद्ध है। नवजागरण के कारण धर्म और समाज के क्षेत्र में जो नये मुद्दे उपस्थित हुए उसके कारण हिन्दू धर्म और उसकी सामाजिक रूढ़िगत मान्यताओं पर कुठाराघात होने लगे। इस नवजागरण की एक फलश्रुति यह भी है कि उसके कारण प्रगतिवादी ताकतों को उभरने का एक मौका मिला। सहस्त्राधिक वर्षों से समाज सोया हुआ था, उसमें चैतन्य का प्रवेश हुआ। धर्म और शास्त्रों के नाम पर समाज में जो अत्याचार, अन्याय और शोषण चल रहा था उस पर एक नये सिरे से सोचने की शुरूआत हुई। नव-जागरण के धार्मिक, सामाजिक आंदोलनों के कारण आधुनिक काल में जो नये विमर्श सामने आये उनमें नारी-विमर्श के कारण हिन्दू समाज में नारी का जिस तरह धर्म, रीति-रिवाज और परंपरा के नाम पर शोषण हो रहा था उसके लिए विरोधी स्वर उठने लगे और नारी-शोषण के विभिन्न कोणों को उजागर करने की प्रवृत्ति सामने आयी। दलित-विमर्श को लेकर सामाजिक न्याय, सामाजिक बराबरी, अस्पृश्यता निवारण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे उपस्थित हुए। यदि हम आधुनिक हिन्दी साहित्य पर एक दृष्टिपात करें तो आधुनिक काल में नारी-विमर्श का चिंतन तो पूर्व-प्रेमचन्दकाल से हो गया था, किन्तु दलित-विमर्श की बात मुख्यतया प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द युग से प्रारंभ हुई है।

कहानी का सम्बन्ध यथार्थ से है। बीच में कुछ समय वह प्राचीनकालीन इतिहास और संस्कृति के बौरवगान में विलीन हो गई थी, किन्तु उसे पुनः वर्तमान और यथार्थ से जोड़ने का कार्य प्रेमचन्द ने किया था जिसे हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में भी रेखांकित कर चुके हैं। कहानी का संबंध यथार्थ से है, अतः समाज की जो यथार्थ

समस्याएं हैं उनका आकलन कहानी में किसी—न - किसी रूप में होता रहा है । हमारे यहां धर्म और शास्त्र को लेकर एक वर्ग के लोगों को दबाया गया । उनके मानवीय अधिकारों की परवाह न करते हुए उनकी भावनाओं को रौंदा गया । इस प्रकार धर्म और शास्त्र के नाम पर जिनका सामाजिक , आर्थिक , राजनीतिक , सांस्कृतिक शोषण हुआ उनमें मुख्यतया दो वर्ग आते हैं — नारी वर्ग और दलित वर्ग । आर्य प्रजा ~~पितृसत्तात्मक~~ पितृसत्तात्मक पद्धति में विश्वास करती थी । अतः वहां प्रारंभ से ही पुरुषों का वर्चस्व रहा । यद्यपि यह कहा जाता रहा है कि वैदिक काल में स्त्रियों को कई प्रकार की स्वतंत्रता थी । वेदों में अनेक ऋचाएं महिला विदुषियों की मिलती हैं , किन्तु परिमाण की दृष्टि से विचार किया जाए तो जितनी ऋचाएं पुरुष ऋषियों की मिलती हैं , उतनी ऋचाएं ऋषि-पत्नियों या ऋषि-कन्याओं की मिलती नहीं हैं । वैदिक काल के बाद हम ~~ज्यों~~ जैसे-जैसे इधर वर्तमान की ओर संक्रमित होते हैं स्त्रियों की स्वतंत्रता शनैः शनैः खत्म होती गयी है और उनको पुरुषों के अधीन रहना पड़ा है । शैशव अवस्था में पिता या बड़े भाई के संरक्षण में , युवावस्था में पति के संरक्षण में और वृद्धावस्था में उसे पुत्रों के संरक्षण में रहना चाहिए , यह शिक्षा उसे शैशव-काल से ही दी जाती है । मनु ने स्वयं कहा है कि स्त्रियां कभी भी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है —

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ।। (15)

शास्त्रों का निर्माण पुरुषों ने किया , अतः उनमें जो नियम बनाये गये उनमें उनकी सुविधा का विशेष रूप से ध्यान रखा गया । यहां एक उदाहरण के द्वारा इस बात को स्पष्ट करेंगे । हमारे यहां "विधवा" ~~x~~ शब्द तो परापूर्व से मिल रहा है , किन्तु "विधुर"

PITh 1421

शब्द मिलता नहीं है । "विधुर" शब्द "विधवा" के ध्वनि-सौन्दर्य पर पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों की इजाद है । कारण यह है कि समाज में विधवाएं तो होती थीं, किन्तु "विधुर" नहीं होते थे । जिनका अस्तित्व होता है उनके लिए संज्ञा मिलती है । हमारे शास्त्रों में विधवाओं के पुनर्विवाह की व्यवस्था नहीं थी । पति की मृत्यु के बाद स्त्री दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी । उनको अपना शेष जीवन विधवा के रूप में ही बिताना पड़ता था । विधवाओं के प्रति घर -परिवार और समाज का दृष्टिकोण भी उदार या सहानुभूति वाला नहीं था, बल्कि उसे अमानवीय व्यवहार कह सकते हैं । उनकी सरेआम उपेक्षा होती थी, अपमान होता था । घर- परिवार के शुभ कार्यों में उनको दूर रखा जाता था । उनको श्रृंगार करने की मनाही थी । स्वादिष्ट भोजन उनके लिए वर्ज्य था । ऐसी अनेक वर्जनाओं के बीच उन्हें अपना जीवन जानवर के मानिन्द गुजारना पड़ता था । दूसरी तरफ जिन पुरुषों की पत्नियां गुजर जाती थीं, वे अविवाहित जीवन नहीं बिताते थे । कुछ दिनों या कुछ महीनों के उपरान्त वे दूसरा ब्याह रचा लेते थे । विधवा-विवाह वर्ज्य था, अतः किसी भी अवस्था का पुरुष हो वह अविवाहित कन्या से ही विवाह करता था । कई बार तो ऐसा होता था कि 55-60 साल का पुरुष 16-17 साल की लड़की से विवाह करता था । कुछ वर्षों में वह तो काल-कवलित हो जाता था, परन्तु अपने पीछे सिसक-सिसक कर रोने के लिए एक युवा विधवा को छोड़ जाता था । इस प्रकार विधवाओं की संख्या में निरंतर अभिवृद्धि होती ही रहती थी । उनका जीवन बड़ा ही नारकीय प्रकार का होता था । उधर पूरब और बंगाल तरफ के लोग कई बार ऐसी विधवाओं को बनारस छोड़ जाते थे और फिर उनकी कोई खोज-खबर भी नहीं लेता था । दीपस मेहता ने बनारस की इन्हीं विधवाओं को लेकर एक फिल्म बनायी है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा गया है, किन्तु जब बनारस में इस फिल्म

का शूटिंग चल रहा था तब फण्डामेन्टलिस्ट प्रकार के लोगों ने काफ़ी कोहराम मचाया था , तोड़-फोड़ की थी और बाद में दीपा मेहता को वह फिल्म विदेशों में ही शूट करनी पड़ी थी । यहाँ एक बात हम हकीकती तौर पर साफ़ कर देना चाहेंगे कि इतिहास और वास्तविकताओं से कतराने वाले लोग अपने पक्ष को लेकर बड़े कमजोर होते हैं । वे कभी सत्य को देखना ही नहीं चाहते और अपनी शाहमृगी दृष्टि और सोच के साथ "प्राचीनता" की "[illegible] लोलमलोल" में लगे रहते हैं ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि धर्म और शास्त्रों के नाम को लेकर हजारों वर्षों तक नारियों का शोषण होता रहा । मजे की बात तो यह है कि उनका शोषण भी होता रहा और दूसरी तरफ उनका गुणगान भी होता रहा । हमारे यहाँ यह धोखाधड़ी बराबर चलती रही कि एक तरफ तो कहा जाता रहा — " यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः " और दूसरी तरफ नारियों पर अनेक प्रकार की निर्योग्यताएं (disabilities) भी थोपी गयीं । जैसे नारी विद्याध्ययन नहीं कर सकती , वेद की ऋचाओं का पाठ नहीं कर सकती , वह हिन्दुओं के सोलह संस्कारों की अधिकारिणी नहीं है । माता-पिता का अग्नि-संस्कार नहीं कर सकती , श्राद्ध और पिण्डदान नहीं कर सकती आदि- आदि ।

अभी कुछ वर्ष पूर्व ही पुरी के शंकराचार्य ने अरुंधती राय नामक एक विदुषी महिला को वेद-ऋचाओं का पाठ नहीं करने दिया था । उन्होंने सरेआम उद्घोषणा कि उनके कार्यक्रम में यदि वेद की ऋचाओं का पाठ किसी महिला के द्वारा हुआ तो वे उस कार्यक्रम का बहिष्कार करेंगे । कुछ महिला-संगठनों ने "हाय-तोबा" मचाई पर कुछ दिनों में उस अध्याय को समाप्त कर दिया गया । शंकराचार्यजी का भला कोई क्या कर सकता है ? यद्यपि उनकी बात हमारे संविधान पर कुठाराघात के समान थी , पर किसीके कानों में जू तक नहीं रेंगी । 16

इस प्रकार स्त्री को एक तरफ देवी-लक्ष्मी, जगत्-जननी भी कहा जाता रहा और दूसरी तरफ अनेक प्रकार की निर्योग्यताओं (disabilities) को थोपकर उसे कठपुतली भी बनाया गया। स्त्री का जुझारू और जीवटवाला रूप तो निम्नवर्ग में फिर भी मिल जाता है, तथाकथित उच्चवर्ग या अभिजातवर्ग में तो वह पुरुषों द्वारा निर्मित डोरी पर नाचने और फुदकने वाली कठपुतली मात्र है। विमल मित्र द्वारा लिखित "साहिब-बीबी-गुलाम" में नारी के प्रति जो दृष्टिकोण है, वह पूर्णतया सामंतवादी मनोवृत्ति का परिचायक है। इस उपन्यास पर फिल्म भी बनी थी। उस फिल्म की नायिका (मीनाकुमारी) जब अपने सामंत-पति को एक स्थान पर कहती है कि हम यहां अकेले बैठे-बैठे क्या करें, तो हंसते हुए नायक कहता है — " तुम भी अपनी जिठानियों की तरह गहने बनवाओ, गहने तुड़वाओ और फिर बनाओ। " गोया इसके अलावा स्त्री का कोई अस्तित्व ही नहीं है, पहचान ही नहीं है। क्या यही नारी की पूजा है ?

अगर हम अपने धर्म और शास्त्रों पर, समाज-जीवन और उसकी परंपराओं पर एक सूक्ष्म दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि हमारे यहां सिद्धान्त और व्यवहार में जमीन-आसमान का अंतर होता है। सिद्धान्त के स्तर-पर, दर्शन के स्तर पर, हम बड़ी-बड़ी बातें (शैलेश मटियानी के शब्दों में लंतरानियां) करते हैं; परन्तु व्यवहार के स्तर पर उनमें से कुछ भी नहीं ठहरता। और इस प्रकार उल्टी-सीधी बातें करके ही स्त्री को अभी तक उलझाया गया है, और अभी भी एक विशिष्ट वर्ग की ओर से उलझाया जा रहा है। उन्हें ठगा जा रहा है, मूर्ख बनाया जा रहा है। लोगों के शोषण करने का यह एक अच्छा तरीका है। नारी का शोषण करना है, उसे "जगज्जननी" बना दो, किसान का शोषण करना है, उसे जगत-तात " बना दो और फिर अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों द्वारा उनका शोषण करते रहो। ध्यान रहे गांवों में जिस

जिस बकरे का बलिदान देना होता है उसे खूब माला- वाला पहनायी जाती है ।

हमारे शास्त्रों में अनेक स्थानों पर स्त्रियों और दलितों के लिए समान प्रकार की वर्जनाएं मिलती हैं । अनेक स्थानों पर "शूद्रा च नारी" ये शब्द-समूह मिलते हैं । हमारे शास्त्रों में एक स्थान पर बताया गया है कि एक कौए , एक चांडाल और एक स्त्री की हत्या का प्रायश्चित केवल एक दिन का व्रत है ।[17] अभिप्राय यह कि एक कौए को मारो और एक स्त्री को मारो और एक चांडाल को मारो , सब बराबर है । दूसरे शब्दों में कहें तो कौए , स्त्री और चांडाल की स्थिति एक ही है । हमारे यहां सीता की अग्नि-परीक्षा का तो विधान है , परंतु राम की अग्नि-परीक्षा का विधान कहीं भी नहीं है ।

उपर्युक्त कारणों से सहस्त्राधिक वर्षों से नारी का शोषण हुआ और नारी की स्थिति पददलित-सी रही । नवजागरण में जो धार्मिक -सामाजिक आंदोलन हुए , उन आंदोलनों में नारी जीवन की इन विषमताओं और विसंगतियों को रेखांकित किया गया । फलतः पूर्व-प्रेमचन्दकाल से ही नारी-जीवन की विवशता और करुणा को रेखांकित करने का प्रयास अनेक लेखकों ने किया है । इस प्रकार नारी-विमर्श को लेकर चिंतन कुछ पहले शुरू हुआ । दलित-विमर्श का चिंतन प्रथमतः हमें प्रेमचन्दयुग में मिलता है ।

दलित-विमर्श :
==========

जिस प्रकार धर्म और शास्त्र के नाम पर नारी का शोषण हुआ , ठीक उसी प्रकार , बल्कि और भी अमानवीय तरीकों से दलितों का शोषण हुआ । नाटक की उत्पत्ति के संदर्भ में जो अलग-अलग सिद्धान्त माने गए हैं , उनमें एक सिद्धान्त वैदिक कर्मकांड का भी है । डा. कुंवरचन्द्रप्रकाश सिंह के मतानुसार वैदिक क्रियाओं को बोधगम्य एवं सर्ववर्णिक बताने के लिए जिन कर्मकांडीय क्रियाओं का

प्रारंभ हुआ था उनसे आगे चलकर नाटकों का विकास हुआ । वैदिक-कर्मकाण्डों में जो लीलाएं होती थीं उनमें एक लीला का नाम था — "सोमक्रयण" । इसमें सोमयज्ञ के प्रारंभ में एक शूद्र सोम बेचने के लिए आता है और मोल-भाव तय करने के पश्चात् मूल्य देकर उसका सोम खरीद लिया जाता है । परन्तु अन्त में वह मूल्य भी उससे छिन लिया जाता है और उसे पत्थरों और ढेलों से मार-मार कर भगा दिया जाता है । बेचारा शूद्र इस प्रकार हाथ मलता रह जाता है जिस प्रकार मधु लूट लिए जाने पर "मधुमक्षिका" । [18]

यहां पर बात तो नाटक के उद्भव की है, परन्तु प्रकारान्तर से शूद्रों या दलितों का शोषण वैदिक काल से ही हो रहा था उस तथ्य पर भी प्रकाश पड़ता है । नाटक को जो पांचवा वेद ~~कहा~~ कहा गया है, उससे भी यह प्रकट होता है कि वैदिक काल में शूद्रों पर कई प्रकार की निर्योग्यताएं (disobilities) थोपी गयी थीं । भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का एक श्लोक है —

" न वेद व्यवहारो यम् संश्राव्य शूद्रजातिषु ।
तस्मात् सृजांपरंवेदं पंचम् सर्व वर्णिकम ।। " [19]

अर्थात् शूद्र वर्ण के लोग वेदों को सुन नहीं सकते थे, पढ़ नहीं सकते थे, अतः ऐसे लोग भी आनंद उठा सके इस हेतु से नाटक रूपी इस पांचवे वेद की सृष्टि की गयी । यहां प्रकारान्तर से एक बात द्योतित होती है कि शूद्रों को वैदिक काल से ही अनेक मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया था ।

ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त के अनुसार ब्राह्मण विराट स्वरूप परमात्मा का मुख है, क्षत्रिय उनकी भुजाएं हैं, वैश्य उनकी जंघाएं और उदर हैं और शूद्र उनके पांव है । इसी सूक्त में ~~यहां~~ यह भी कहा गया है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति होने के कारण उनका कार्य बोलना तथा लोगों को शिक्षित करना है । क्षत्रियों की

उत्पत्ति ब्रह्मा के भुजाओं से हुई । भुजा शक्ति की सूचक है । अतः क्षत्रियों का कार्य शस्त्र धारण करना और ऐसा करके सबकी रक्षा करना है । उसी प्रकार उदर या जंघाओं से वैश्यों की उत्पत्ति हुई, अतः उनका कार्य व्यापार एवं पशुपालन द्वारा संपत्ति का उत्पादन करना है । शूद्रों की उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से हुई, अतः उनको सभी वर्णों की सेवा का कार्य सौंपा गया । [20]

उत्तर वैदिक काल में बृहदारण्यक और छांदोग्य उपनिषद में वर्णों की उत्पत्ति के संदर्भ में कुछ निर्देशन दिखाए हैं । बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार ब्रह्मा ने प्रारंभ में केवल ब्राह्मणों को उत्पन्न किया । बाद में जब ब्राह्मण सारे कार्य पूरे नहीं कर सके, तो समाज-कल्याण को ध्यान में रखकर ब्रह्मा ने क्षत्रियों को उत्पन्न किया । किन्तु जब ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णों से समाज-संबंधी सभी कार्यों की पूर्ति नहीं हुई तो ब्रह्मा ने तीसरे वर्ण के रूप में वैश्य को उत्पन्न किया । इन तीनों वर्णों से भी जब समाज का कार्य सुचारु रूप से नहीं हुआ तब ब्रह्मा ने शूद्र वर्ण की उत्पत्ति की । वर्ण-व्यवस्था की यह प्रथम स्थापना पहले स्वर्ग लोक में हुई और बाद में उसके आधार पर मृत्यु लोक में वर्णों की उत्पत्ति हुई । [21]

छांदोग्य उपनिषद के अनुसार व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण उसके द्वारा पूर्व जन्म में किए गए कर्मों के आधार पर होता है । पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर ~~व्यक्तिविशेष~~ व्यक्ति की स्वभावगत विशेषताएं या उसके गुण बनते हैं । और इन्हीं के आधार पर उसकी वर्ण-विशेष की सदस्यता निश्चित होती है । इसी प्रकार वर्ण का आधार व्यक्ति के कर्म और गुण बताये गये । किन्तु बहुत चालाकी से यह भी स्थापित कर दिया गया कि व्यक्ति के गुण पूर्व जन्मों का परिणाम हैं । अतः युक्तिपूर्वक जन्म द्वारा वर्ण-व्यवस्था की पद्धति लागू कर दी गयी ।

भरत के नाट्यशास्त्र में एक स्थान पर लिखा हुआ है कि -- " न वेद व्यवहारो यं संश्राव्य शूद्र जातिषु । तस्मात् सृजा परंवेदं पंचम सर्ववर्णिकम ।। " 22 अर्थात् वेदों का अध्ययन शूद्र जाति के लिए वर्जित है । अतः नाट्यरूपी पंचम वेद की स्थापना सभी वर्णों को ध्यान में रखकर हुई । इससे एक बात प्रमाणित होती है कि शूद्रों को लेकर हीन भावना वैदिक काल से ही प्रारंभ हो गयी है । संस्कृत नाटकों में निम्न वर्ग के पात्र शुद्ध संस्कृत न बोलकर प्राकृत या अपभ्रंश भाषा का प्रयोग करते थे । इससे भी यही प्रामाणित होता है कि निम्न वर्ण के लोगों को उचित शिक्षा से वंचित रखा गया था । पूर्ववर्ती पृष्ठों में "सोमक्रयण" की जिस लीला का उल्लेख किया गया है, उससे भी शूद्रों के शोषण की बात ध्वनित होती है ।

जब हम दलित-विमर्श की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य उन तमाम स्थितियों से है जिनके रहते दलितों का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक शोषण किया गया । दलितों के इस प्रकार के शोषण के लिए उन लोगों पर कई प्रकार की निर्योग्यताएं (Disabilities) थोपी गयीं । यहां संक्षेप में उन तमाम निर्योग्यताओं को उद्घाटित करने का हमारा उपक्रम है ।

दलितों पर थोपी गयीं निर्योग्यताएं (Disabilities) :

निर्योग्यताओं से तात्पर्य है किसी वर्ग या समूह को कुछ अधिकारों या सुविधाओं को प्राप्त करने में अयोग्य मान लेना । भारत में अस्पृश्य जातियों, दूसरे शब्दों में, दलितों पर ऐसी कई निर्योग्यताएं थोपी गयी हैं । इन निर्योग्यताओं के कारण उनको जीवन में आगे बढ़ने और अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं मिलता है । इन निर्योग्यताओं के कारण उनको दासों या गुलामों-सा

जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया गया और सब प्रकार की सुख-सुविधाओं से वंचित किया गया । यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि उनके कर्तव्य तो निश्चित किये गये , किन्तु अधिकारों से उन्हें पूर्णरूपेण वंचित रखा गया । ये निर्योग्यताएं 19वीं शताब्दी के आरंभ से जो सुधार आंदोलन शुरू हुए तथा बाद में स्वतंत्र भारत में सरकारी प्रयत्नों के परिणामस्वरूप जो कुछ कार्य हुए उससे उनमें कुछ कमी आयी है , किन्तु परिमाणतः यह नगण्य है । दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी कोई खास परिवर्तन लक्षित नहीं किया जा सकता । ऊपर जिन निर्योग्यताओं की बात कही गई है , उनका उल्लेख स्मृतियों , पुराणों तथा धर्मग्रन्थों में मिलता है । इन निर्योग्यताओं को हम ~~निम्नलिखित~~ निम्नलिखित ढंग से वर्गीकृत कर सकते हैं — (क) धार्मिक निर्योग्यताएं (रीलिजियस डिसएबिलीटिज) , (ख) सामाजिक निर्योग्यताएं (सोशियल डिसएबिलीटिज) , (ग) आर्थिक निर्योग्यताएं (इकोनामिक डिसएबिलीटिज) और (घ) राजनीतिक निर्योग्यताएं (पोलिटिकल डिसएबिलीटिज) । (23)

(क) धार्मिक निर्योग्यताएं (रीलिजियस डिसएबिलीटिज) :

धार्मिक निर्योग्यताओं में उन निर्योग्यताओं का समावेश होता है जो हिन्दू धर्म से संबंधित हैं , जिनमें निम्नलिखित को रेखांकित किया जा सकता है --

/1/ मंदिरों तथा पवित्र स्थानों में प्रवेश पर प्रतिबन्ध : अस्पृश्यों को अपवित्र माना गया है , अतः उन लोगों के मंदिर-प्रवेश , तीर्थ स्थानों व पवित्र नदी-घाटों के प्रवेश से वंचित किया गया । यहां तक कि वे अपने घरों में भी देवी-देवताओं की पूजा नहीं कर सकते थे ।

/2/ धार्मिक सुख-सुविधाओं से वंचित : उनको वेदों तथा अन्य धर्म-ग्रन्थों को पढ़ने की अनुमति नहीं थी । अपनी उन्नति के लिए उन्हें तप या साधना करने की भी अनुमति नहीं थी । त्रेता युग में राम द्वारा शम्बूक की हत्या इसलिए की गई कि शम्बूक शूद्र जाति का था और शास्त्रानुसार उसे तप करने का कोई अधिकार नहीं था । बावजूद इसके वह तप कर रहा था , इसलिए राम द्वारा उसकी हत्या करवा दी जाती है । मृतकों के अग्निसंस्कार हेतु वे सार्वजनिक श्मशान-घाटों का प्रयोग नहीं कर सकते थे । उनके श्मशान-घाट अलग रहते थे । आज भी गुजरात के कई गांवों में अस्पृश्य जातियों में अग्नि-संस्कार नहीं होते । मृतकों को जमीन में दफनाया जाता है और वह स्थान भी अन्य लोगों से अलग-थलग होता है । अस्पृश्य जातियों को सभी प्रकार की धार्मिक सुविधाओं और क्रियाओं से अलग रखा गया है । मनुस्मृति में बताया गया है कि अस्पृश्य को किसी प्रकार की राय न दी जाए , न ही उसे प्रसाद दिया जाए , न उसके समक्ष किसी पवित्र विधान की व्याख्या की जाए । इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति अस्पृश्यों के साथ सहानुभूति रखते हुए पवित्र विधानों की व्याख्या करता है , या उसके लिए कोई धार्मिक कार्य करता है , तो केवल वह अस्पृश्य ही नहीं , अपितु ऐसा करने वाला अन्य व्यक्ति भी "असंवृत्त" नामक नरक में जाता है । [24] इसके अतिरिक्त अस्पृश्य जातियों को पूजा-आराधना , भजन-कीर्तन आदि का भी कोई ~~अधिकार~~ अधिकार नहीं था । ब्राह्मण उनके यहां पूजा , श्राद्ध , यज्ञ या कथा आदि करने के लिए नहीं जा सकता ।[25]

/3/ धार्मिक संस्कारों पर प्रतिबन्ध : अस्पृश्य जातियों को जन्म से ही अस्पृश्य एवं अपवित्र माना गया । दूसरे उनके शुद्धिकरण की भी कोई व्यवस्था नहीं है । अतः हिन्दुओं में प्रचलित शुद्धिकरण हेतु जो सोलह प्रकार के संस्कार बताए गए हैं उनका विधान अस्पृश्यों के लिए नहीं है । उनको विद्यारंभ , उपनयन , चूड़ा कर्म आदि

संस्कारों की छूट नहीं दी गई है । इस संदर्भ में शैलेश मटियानी कृत "प्रेतमुक्ति" कहानी को उल्लेखित किया जा सकता है ।

(26)

§ख§ सामाजिक निर्योग्यताएं § सोशियल डिसएबिलीटिज § :

अस्पृश्य जातियों को अन्य जातियों से अलग रखने हेतु उनकी मानसिक चेतना को कुन्द करने के लिए उनके ऊपर कतिपय सामाजिक निर्योग्यताएं थोपी गयीं , जो इस प्रकार हैं —

/1/ सामाजिक संपर्क पर रोक : सामाजिक संपर्क से पृथक रखने के लिए उनको सामाजिक सम्मेलनों , गोष्ठियों , पंचायतों तथा उत्सवों से अलग रखा गया । उच्च जाति के हिन्दुओं के साथ उनको खानपान के संबंधों से वंचित रखा गया । अतः कहीं-कहीं प्रातः तथा शाम के समय उनका नगर-प्रवेश वर्जित था , क्योंकि उस समय परछाइयां लम्बी होती हैं , अतः उनकी परछाइयों के स्पर्श से बचने के लिए इस प्रकार की व्यवस्था दी गयी थी । दक्षिण भारत में तो कई स्थानों पर उन्हें सड़क पर चलने का भी अधिकार नहीं था । उनके पदचिह्न न रह जाए इस हेतु उनके पीछे झाड़ू लगाया जाता था । आगे कोई पात्र लटकाना होता था जिसमें वे थूक सकें ।

/2/ सार्वजनिक वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबंध : अस्पृश्य जातियों को सार्वजनिक कुओं से पानी नहीं भरने दिया जाता था । उनके बच्चों को स्कूल में पढ़ने तथा छात्रालयों में रहने की अनुमति नहीं थी । ये तांबा , पित्तल या कांसे के बरतन का प्रयोग नहीं कर सकते थे । अच्छे वस्त्र और सोने के आभूषण नहीं पहन सकते थे । दुकानदार उन्हें सामान नहीं देता था , धोबी उनके कपड़े नहीं धोता , नाई उनके बाल नहीं बनाता और कहार उनका पानी नहीं भरता था । उन्हें अन्य सवर्णों की बस्ती से अलग रखा जाता

था । उनके मुहल्ले अलग होते थे और वे गांव या नगर के बाहर होते थे । उनके मुहल्लों को "चमरौटी" , "चमादड़ी " आदि तुच्छतावाची शब्दों से पुकारा जाता था ।

/3/ शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधाओं से वंचित : अस्पृश्यों तथा अन्य शूद्र जाति के लोगों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था । उन्हें सभी सार्वजनिक स्थानों से अलग-थलग रहना पड़ता था । उन्हें चौपालों , मेलों तथा हाटों में शामिल होकर अपना मनोरंजन करने का अधिकार नहीं था । इसका परिणाम यह हुआ कि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग अशिक्षित और निरक्षर रह गया ।

/4/ अस्पृश्य - एक निरक्षर समाज के रूप में : अस्पृश्य को एक पृथक समाज के रूप में रहना पड़ता था । इस संदर्भ में डा. के.एम पणिकर ने लिखा है कि जाति-व्यवस्था जब अपनी यौवनावस्था में क्रियाशील थी , उस समय इन अस्पृश्यों की स्थिति कई प्रकार से दासता से भी खराब थी । दास या गुलाम कम-से-कम एक स्वामी के अधीन होता है और इसलिए उसका अपने स्वामी के साथ कई बार व्यक्तिगत संबंध भी स्थापित होता था । लेकिन अस्पृश्य परिवारों पर तो गांव भर की दासता का बोझ होता था । व्यक्तियों के दास रखने के बदले प्रत्येक गांव के साथ कुछ अस्पृश्य परिवारों को उनकी सेवा हेतु संलग्नित कर दिया जाता था । उच्च जाति का कोई भी व्यक्ति इन अस्पृश्य लोगों के साथ किसी प्रकार का व्यक्तिगत संबंध नहीं रखता था । [27]

ब्रिटिश शासन के प्रारंभ में दक्षिण में दलित जातियों की स्थिति बड़ी असह्य थी और उन पर अकथनीय अत्याचार होते थे । वहां की उच्च जाति के लोग नीच जातियों के न केवल स्पर्श से , बल्कि परछाइयों से भी अपवित्र हो जाते थे । इस संदर्भ में डा. हरिदत्त

ने लिखा है — " कोचीन की सरकारी रिपोर्ट ~~में×के×~~ के अनुसार ब्राह्मण नायर के स्पर्श से दूषित समझे जाते थे , किन्तु कमलन, बढ़ई , लुहार , चमार , ताड़ी निकालने वाले 36 फीट से , चेरूमत कृषक 48 फीट से और परमन (गो-मांस भक्षक परिहा (64 फीट से ब्राह्मण को दूषित कर सकते हैं । यह संतोष की बात है कि इससे पुरानी रिपोर्टों में परिहा 72 फीट की दूरी से अपवित्र करने वाला माना गया था । [28] अछूत शहरों के बाहर रहते थे । मंदिरों में इनका प्रवेश वर्जित था , क्योंकि सब भक्तों का उद्धार करने वाले देवता भी इनके दर्शन से दूषित हो जाते थे । कुओं से पानी नहीं भर सकते थे । अस्पतालों और पाठशालाओं का लाभ नहीं उठा सकते थे । वे उच्च वर्ग के बेगार आदि के अत्याचार सहते हुए बड़े दुःख से अपने नारकीय जीवन की घड़ियां गिनते थे । [29]×

(ग(आर्थिक निर्योग्यताएं (इकोनोमिक डिस एबिलिटीज़ (:

अस्पृश्य दलित जातियों को समाज द्वारा ऐसे कार्य सौंपे जाते थे जिनको सवर्ण जातियों के लोग नहीं करते थे । उन पर ऐसी आर्थिक निर्योग्यताएं थोपी गयीं थीं कि उनकी आर्थिक स्थिति सदैव दयनीय बनी रहती थी । वे हमेशा ऐसी स्थिति में रखे गए कि विवश होकर जूठे भोजन , फटे पुराने वस्त्र तथा अन्य लोगों द्वारा त्याज्य वस्तुओं से उन्हें अपना काम चलाना पड़ता था । [30] उनकी आर्थिक निर्योग्यताएं इस प्रकार हैं —

/1/ <u>व्यवसायगत निर्योग्यता :</u> इस वर्ग के लोगों को खेती करने , व्यापार करने तथा शिक्षा प्राप्त करके नौकरी करने का अधिकार नहीं था । उन लोगों को मल-मूत्र उठाने तथा ढोर के चमड़ों से वस्तुएं बनाने का काम सौंपा गया था । इनको यही काम करना पड़ता था । इसके लिए वे बाध्य थे । इन कार्यों के अलावा गांव के लोगों की आवश्यकता के अनुसार दूसरों के खेतों में श्रमिकों के रूप में कार्य कर सकते थे । इन

लोगों पर इस प्रकार की निर्योग्यताएं लागू कर दी गई थीं कि वे अपने परंपरागत पेशों को छोड़कर दूसरे प्रकार का पेशा नहीं कर सकते थे ।

/2/ सम्पत्ति-विषयक निर्योग्यता : इस वर्ग के लोग संपत्ति अर्जित नहीं कर सकते थे । वे जमीन भी नहीं खरीद सकते थे ।[32] वे धन-संग्रह भी नहीं कर सकते थे ।[33] सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी थी कि उनको उनकी सेवाओं के बदले जूठा भोजन तथा फटे-पुराने वस्त्र दिए जाते थे । काम के बदले चीज़-वस्तु दी जाती थी । रोकड़-रकम कैश उनको कभी भी मिलती नहीं थी । सोना-चांदी तथा तांबा-पित्तल के बरतन जिससे संपत्ति का संचयन हो सकता है, ऐसी वस्तुओं को वे खरीद नहीं सकते थे । प्रथमतः इन कीमती धातुओं को खरीदने के लिए जो पैसे चाहिए वे पैसे ही उनके पास रहते नहीं थे । तथापि यदि कोई कहीं से पैसे प्राप्त करके इन चीजों को खरीदना चाहे तो खरीद नहीं सकता था । अतः सामाजिक व्यवस्था ही उस प्रकार की थी कि किसी भी रूप में वे संपत्ति अर्जित नहीं कर सकते थे । जगदीशचन्द्र ने इसी-लिए अपने उपन्यास का नाम रखा था — " धरती धन न अपना " । जिस धरती पर अन्य सभी लोगों का अधिकार अधिकार था, इन धरतीपुत्रों का ही अधिकार नहीं था । उनको ही इस अधिकार से वंचित रखा गया था । इस वर्ग के लोगों को उच्च वर्ग के लोगों की सेवा करनी पड़ती थी और इसके प्रतिफल के रूप में उनको बहुत कम दिया जाता था । "नमस्ते" या "प्रणाम " के बदले ये लोग "सेवा मानिये " क्रिया का प्रयोग करते थे, इससे भी यह बात प्रतिफलित होती है । भाषा भी बहुत कुछ कह जाती है । भाषा का भी अपना एक समाजशास्त्र है । इस क्षेत्र के अध्येताओं को इस रूप में भी सोचना-विचारना चाहिए ।

/3/ भरपेट भोजन की सुविधा से वंचित : इस वर्ग के लोगों को हमेशा ऐसी स्थिति में रखा गया कि अपने बलबूते पर वे कभी भरपेट भोजन या अच्छा भोजन न कर सकें । अपनी सेवाओं के बदले में उनको बेहद जूठा भोजन मिलता था । गांव में किसीके यहां शादी-ब्याह हो तब अच्छा भोजन वह भी जूठन के रूप में मिलता था । [34] हिन्दुओं ने धर्म के नाम पर इनका इस तरह से शोषण किया और उनको इस प्रकार की व्यवस्था से संतुष्ठ रहने को बाध्य किया गया । उन्हें कहा गया कि इस जन्म में यदि वे अपने दायित्वों का ठीक तरह से पालन करेंगे तो उनका अगला जन्म निम्न कोटि का न होगा । इस प्रकार इन दलित-अस्पृश्य जातियों को अधिक शोषण का शिकार होना पड़ा ।

(घ) राजनीतिक निर्योग्यताएं (पोलिटिकल डिसएबिलिटीज़) : [35]

अस्पृश्य जातियों को राजनीतिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया था । वे कोई सामान्य-सा सुझाव भी नहीं दे सकते थे । उनकी निर्धारित सेवाओं के अलावा अन्य प्रकार की सार्वजनिक सेवाओं के लिए नौकरी प्राप्त करने का अधिकार उनको प्राप्त नहीं था । उन्हें किसी प्रकार की राजनीतिक ~~संरक्षण~~ सुरक्षा का कोई अधिकार नहीं था । अस्पृश्य जातियों की व्यक्तियों को कोई भी व्यक्ति अपमानित कर सकता था । यहां तक कि उसे पीट भी सकता था । जगदीशचन्द्र कृत "धरती धन न अपना " उपन्यास का हर-नामसिंह चौधरी जब चाहे तक चमारढ़ी में जाकर चमारों की पिटाई करता था । स्वयं लेखक इस सम्बन्ध में अपनी टिप्पणी देते हैं :

" चमारढ़ी में ऐसी घटना कोई नयी बात नहीं थी , ऐसा अक्सर होता रहता था । जब किसी चौधरी की फसल चोरी कट जाती या बरबाद हो जाती , या चमार चौधरी के काम पर न जाता या फिर किसी चौधरी के अन्दर जमीन की मल्कियत का अहसास

जोर पकड़ लेता तो वह अपनी शाख बनाने और चौधर मनवाने के लिए इस मुहल्ले में चला आता । यहां किसी भी व्यक्ति के पिटने के कारणों में उसका ~~xxxxxxxxx~~ चमार होना पर्याप्त माना जाता है ।[36]

उच्चवर्ग या अन्य वर्ग के लोगों द्वारा किए गए ऐसे दुर्व्यवहारों के खिलाफ उन्हें किसी प्रकार का संरक्षण प्राप्त नहीं था । वे इसके खिलाफ़ कोई शिकायत नहीं कर सकते थे । दूसरी तरफ सामान्य प्रकार के अपराध के लिए भी इस वर्ग के लोगों के लिए कठोर-से-कठोर दण्ड की व्यवस्था थी ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म, शास्त्र, सामाजिक नीति-नियम, सामाजिक व्यवस्था आदि के द्वारा दलित जातियों का प्रत्येक दृष्टि से शोषण किया गया । उनको सदैव ऐसी स्थिति में रखा गया कि वे कभी समाज में स्वाभिमानपूर्वक जी नहीं सकते थे । सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी कर दी गई थी कि वे पूर्णतया अन्य जातियों पर अवलम्बित थे । श्रमजीवी होने के कारण वास्तविक स्थिति तो यह थी कि उनकी सेवाओं के बिना अन्य वर्ग और वर्ण के लोगों का काम नहीं चल सकता था ।[37] परन्तु धार्मिक-सामाजिक निर्योग्यताओं के कारण दलित जातियों को कभी आत्मनिर्भर नहीं होने दिया । उसका परिणाम यह हुआ कि दलित जाति का कोई भी व्यक्ति उनका विरोध कर सके या विद्रोह कर सके ऐसी स्थिति का निर्माण ही नहीं हुआ । जिस वर्ग के लोगों को जीवन -जरूरी ~~xx~~ छोटी-छोटी चीजों के लिए भी दूसरे लोगों पर आधारित रहना पड़ता हो, जिनके पास किसी प्रकार की कोई संपत्ति न हो, संपत्ति-संचित करने का कोई जरिया न हो ऐसे लोगों को दबकर रहना ही पड़ता है । अनारक्षित ~~xxxxxx~~ और असंगठित होने के कारण उनके मन में इस अत्याचार और शोषण के खिलाफ़ कोई बात भी

नहीं उठती थी , बल्कि इनके मन में इस प्रकार के संस्कार के बीज बो दिए गए थे कि यही उनकी नियति है । पूर्व जन्म के कर्मों के कारण ही उनको अस्पृश्य होना पड़ा है और अब इस जन्म में यदि वे उच्च जातियों की सेवा श्रद्धा व भक्ति-भाव से करेंगे तो अगले जनम में उन्हें अस्पृश्य नहीं होना पड़ेगा । दलित जातियां असंगठित रहे तथा इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को वे भी न्यायिक मानते रहे इस हेतु से बहुत ही चातुर्य के साथ ब्राह्मण-पुरोहित वर्ग ने दलित जातियों में भी ऊंच-नीच के संस्तरण (Hierarachy) की भावना आरोपित कर दी है । अतः दलित जातियां भी परस्पर एक-दूसरे से श्रेष्ठ या कमतर समझते थे । जातिगत रोटी-बेटी के व्यवहारों की भावना वहां भी स्थापित हो गई थी । जगदीश-चन्द्र कृत "धरती धन न अपना " का काली अपनी ही जाति की ज्ञानो से इसलिए विवाह नहीं कर सका था । संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि अनेक प्रकार की युक्ति-प्रयुक्तियों के द्वारा दलित जातियों का शोषण सहस्त्राधिक वर्षों से होता रहा था और आज भी उसमें कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया है ।

निष्कर्ष :
======

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक सहज ही पहुंच सकते हैं :—

(1) कहानी का प्रत्यक्ष संबंध मानव-समाज तथा मानव-जीवन से है । अंग्रेजी में जिसे "Short- story " कहा जाता है , उसे हिन्दी में कहानी कहते हैं । कहानी का सम्बन्ध समग्र मानव-जाति और उसके जीवनानुभवों से है ।

(2) प्राचीन कथा-साहित्य कथा-सूत्रों (
पर आधारित होता था । वह स्थूल कथावस्तुप्रधान, मनोरंजनप्रधान औरबोधप्रधान होता था , जबकि आधुनिक कथा-कहानी साहित्य

अधिक सूक्ष्म , चरित्र-प्रधान एवं जीवन-दृष्टिसंपन्न होता है । प्राचीन कथा-साहित्य में परिवेश का तत्व नहींवत् रहता था , जबकि वर्तमान कहानी साहित्य में कहानी की सप्राणता का मुख्य आधार ही यही है ।

§3§ कहानी को एक बैठक में पढ़ा जा सकता है । वह पाठक के मस्तिष्क में कोई एक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए लिखी जाती है । कहानी से उन तमाम चीज़ों को बहिष्कृत किया जाता है जो उस प्रभाव विशेष को अग्रसरित करने में बाधक होती हैं । कहानी प्रायः जीवन की किसी मार्मिक घटना या स्थिति पर आधारित है ।

§4§ उपन्यास और कहानी दोनों कथा-साहित्य के प्रकार हैं , किन्तु उनमें आकारगत ही नहीं वस्तुगत और शिल्पगत अन्तर भी है ।

§5§ कहानी का विकास आधुनिक काल में हुआ । पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने कहानी साहित्य को वेग दिया ।

§6§ हिन्दी के प्रारंभिक कहानी लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी , गिरिजाकुमार घोष , रामचन्द्र शुक्ल , मास्टर भगवान दीन , बंगमहिला तथा जयशंकर प्रसाद आदि की गणना कर सकते हैं ।

§7§ जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी कहानी को प्रतिष्ठित तो किया , किन्तु उनकी अधिकांश कहानियां भारत के स्वर्णिम अतीत को रूपायित करती हैं । उसे यथार्थ की जमीन पर लाने का श्रेय प्रेमचन्दजी को जाता है । विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक , सुदर्शन तथा प्रेमचन्दजी की कथात्रयी उल्लिखित है ।

§8§ प्रेमचन्दकाल में कहानी के क्षेत्र में कुछ लेखिकाओं का भी योगदान है जिनमें सुभद्राकुमारी चौहान , उषादेवी मित्रा , शिवरानीदेवी , चन्द्रकिरण सोनरिक्शा , कमलादेवी चौधरानी ,

ओमवती आदि मुख्य हैं । इन्होंने पारिवारिक जीवन के कुछ सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं ।

§9§ प्रेमचन्द के उपरान्त कहानी के क्षेत्र में जिनका मुख्य योगदान हैं ऐसे लेखकों में जैनेन्द्र , अज्ञेय , यशपाल , अश्क , भगवती-चरण वर्मा आदि मुख्य हैं । कहानी इधर एक तरफ जहां मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हो रही थी , वहां दूसरी तरफ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त भी उसे प्रभावित कर रहे थे ।

§10§ कहानी का अगला चरण नयी कहानी का है । इस दौर के कहानीकारों में फणीश्वरनाथ रेणु , शिवप्रसाद सिंह , मार्कण्डेय , अवधनारायण , शैलेश मटियानी , बटरोही , निर्मल वर्मा , उषा प्रियंवदा , कृष्णा सोबती , कमलेश्वर , मोहन राकेश , राजेन्द्र यादव , भीष्म साहनी , अमरकान्त , मन्नू भण्डारी , हरिशंकर परसाई आदि को परिलक्षित किया जा सकता है । नयी कहानी में शाश्वत परंपरागत मूल्यों को न केवल खंडित किया गया है , बल्कि उन्हें अस्वीकृत भी किया गया है ।

§11§ मोटे तौर पर नयी कहानी का रचनाकाल सन् 1950 से माना जाता है । सन् 1960 से 1985 ~~xxxxx~~ तक की कहानी को साठोत्तरी कहानी और 1985 के बाद की कहानी को समकालीन कहानी के अन्तर्गत रख सकते हैं । साठोत्तर कहानी में न केवल समयबोध की अवधारणा है अपितु उसमें साठोत्तरी मानसिकता को भी रेखांकित करने पर जोर दिया गया है । समकालीन कहानी में हमें यथार्थ का बहुआयामी चित्र मिलता है । महानगरीय तथा प्रौद्योगिक जीवन और पूंजीवाद के प्रभावों को यहां लक्षित किया जा सकता है । इस दौर के कहानीकारों में पुराने कहानीकारों के साथ-साथ ज्ञानरंजन , दूधनाथसिंह , ममता कालिया , महेन्द्र भल्ला , इस्माइल , इब्राहिम शरीफ , कृष्णा अग्निहोत्री , निरूपमा

सेवती , पृथ्वीराज मौंगा , मृदुला गर्ग , दीप्ति खंडलवाल , राजी सेठ , चित्रा मुद्गल , ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नेमिशराय, डा. कुसुम वियोगी , सूरजपाल चौहान आदि को परिगणित कर सकते हैं ।

§12§ काल्पनिकता के रहते हुए भी कहानी का यथार्थ जीवन से गहरा संबंध है । अतः पिछले 100-150 वर्षों को देखना हो तो कहानी साहित्य एक आधारभूत स्रोत बन सकता है ।

§13§ आधुनिक काल और आधुनिक युग का एक मुख्य अभिलक्षण दलित-विमर्श है । दलित-विमर्श का अर्थ है दलित, पीड़ित, शोषित जातियों पर और उनके मानवाधिकारों पर एक नये सिरे से चिंतन ।

§14§ दलित जातियों का शोषण सहस्त्राधिक वर्षों से हो रहा है । वैदिक कर्मकांड की सोम-क्रयण क्रियाक्रिय लीला में भी हम उसे रेखांकित कर सकते हैं । वेदों का पठन-पाठन और श्रवण दलितों के लिए वर्जित था ।

§15§ धर्म और शास्त्र के द्वारा दलितों पर अनेक प्रकार की निर्योग्यताएं थोपी गयीं हैं । इन निर्योग्यताओं में धार्मिक निर्योग्यताएं , सामाजिक निर्योग्यताएं , आर्थिक निर्योग्यताएं तथा राजनीतिक निर्योग्यताएं आदि मुख्य हैं ।

§16§ धार्मिक निर्योग्यताओं के अन्तर्गत दलित जातियों को धर्म और शास्त्र का हवाला देकर धार्मिक विधियों और क्रियाओं से अलिप्त रखा गया । मंदिरों में उनका प्रवेश वर्जित था तथा उन्हें धार्मिक संस्कारों को संपन्न करने के अधिकार नहीं दिए गए ।

§17§ सामाजिक निर्योग्यताओं के अन्तर्गत दलित जातियों को सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा गया । उनके

सामाजिक संपर्क पर रोक लगा दी गयी । सार्वजनिक वस्तुओं और स्थानों xx के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिए गए । उनको शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधाओं से भी वंचित रखा गया । दलित समाज एक पृथक निरक्षर समाज बनकर रह गया ।

§18§ आर्थिक निर्योग्यताओं के अन्तर्गत हम देखते हैं कि समाज में ऐसी व्यवस्था कायम की गयी जिससे दलित जातियों का कभी भी किसी भी प्रकार का आर्थिक विकास न हो । सामाजिक नियम ही ऐसे बनाए गए कि दलित वर्ग के पास चल-अचल किसी भी प्रकार की संपत्ति का एकत्रीकरण न हो । उसे सौंपे गए व्यवसाय को छोड़कर अन्य प्रकार के व्यवसाय करने की स्वतंत्रता नहीं थी । उसे जमीन धारण करने का कोई अधिकार नहीं था । उसकी सेवाओं के बदले में उसे कभी रोकड़-रकम § कैश § नहीं दी जाती थी । फलतः जीवनोपयोगी तमाम वस्तुओं के लिए उसे दूसरों पर निर्भर निर्भर रहना पड़ता था ।

§19§ राजनीतिक निर्योग्यताओं के तहत दलित जातियों को सभी प्रकार के राजनीतिक अधिकारों से वंचित किया गया । राज्य में तथा समाज में उसकी कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी । राज्य की नौकरी भी वे नहीं कर सकते थे । अत्याचार और अन्याय के खिलाफ़ शिकायत करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था । दूसरी ओर सामान्य से सामान्य प्रकार के लिए उन्हें बुरी तरह से दण्डित किया जाता था ।

§20§ इस प्रकार धर्म , शास्त्र , पंडे-पुरोहितों , परंपराओं, सामाजिक रीति-रिवाजों के द्वारा उनका इतना अधिक दमन हुआ कि उनकी स्थिति जानवरों से भी बदतर हो गई थी । जानवर , कुत्ते और बिल्ली तक , स्पृश्य थे , ये ही केवल अस्पृश्य थे ।

==== xxxxx =======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ द्रष्टव्य : काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय : पृ. 194 ।
§2§ द क्वेस्ट फार लिटरेचर : जे.टी. शिप्ले : पृ. 299 ।
§3§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 143 ।
§4§ द्रष्टव्य : काव्य के रूप : पृ. 207 ।
§5§ वही : पृ. 208 ।
§6§ भूमिका : अभिनव कहानियां : सं. डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : पृ. 3 ।
§7§ वही ।
§8§ वही : पृ. 19 ।
§9§ वही : भूमिका से ।
§10§ वही : भूमिका से ।
§11§ चिन्तनिका : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 38 ।
§12§ बृहद् साहित्यिक निबंध : सं. डा. यश गुलाटी : पृ. 274 ।
§13§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 274-275 तथा इण्डिया टु डे : साहित्य वार्षिकी विशेषांक : 1996 और दलित जीवन की कहानियां : डा. बिरिराज शरण ।
§14§ द्रष्टव्य : बृहद् साहित्यिक निबंध : पृ. 276 ।
§15§ द्रष्टव्य : भारतीय समाज तथा संस्कृति : डा. एम.एल. गुप्ता : पृ. 360 ।
§16§ द्रष्टव्य : परिधि पर स्त्री : डा. मृणाल पाण्डे ।
§17§ द्रष्टव्य : औरत के हक में : तस्लीमा नसरीन ।
§18§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : पृ. 86 ।
§19§ वही : पृ. 82 ।
§20§ द्रष्टव्य : भारतीय समाज तथा संस्कृति : पृ. 66 ।

§21§ सी : ए कनस्ट्रक्टीव सर्वे आफ उपनिषदिक फिलोसोफी : प्रो. रानडे : पृ. 60 ।

§22§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : पृ. 82 ।

§23§ द्रष्टव्य : भारतीय सामाजिक समस्याएं : डा. एम.एल. गुप्ता : पृ. 279-282 ।

§24§ द्रष्टव्य : जाति-व्यवस्था : डा. नर्मदेश्वर प्रसाद : पृ. 222 ।

§25§ द्रष्टव्य : भारतीय सामाजिक समस्याएं : पृ. 279 ।

§26§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 280 ।

§27§ हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर : डा. के.एम. पनिकर : पृ. 27 ।

§28§ भारत का सांस्कृतिक इतिहास : डा. हरिदत्त वेदालंकार : पृ. 277 ।

§29§ विस्तार के लिए द्रष्टव्य : भारतीय सामाजिक समस्याएं /: पृ. 281 - 282 ।

§30§ द्रष्टव्य : अक्करमाशी : डा. शरणकुमार लिंबाले : पृ.38 ।

§31§ द्रष्टव्य : कहानी : अम्मा : ओमप्रकाश वाल्मीकि : तथा कहानी : " वह पढ़ गई " और डा. कुसुम वियोगी : चर्चित दलित कहानियां : सं. डा . कुसुम वियोगी ।

§32§ उपन्यास : धरती धन न अपना : जगदीशचन्द्र ।

§33§ द्रष्टव्य : मार्क्स और पिछड़े हुए समाज : डा. रामविलास शर्मा: पृ. 235 ।

§34§ द्रष्टव्य : अक्करमाशी : पृ. 20-21 ।

§35§ विस्तार के लिए द्रष्टव्य : भारतीय सामाजिक समस्याएं : पृ. 282 ।

§36§ धरती धन न अपना : पृ. 35 ।

§37§ द्रष्टव्य : सतजुगिया आदमी : कहानी : शैलेश मटियानी : बर्फ की चट्टानें : बड़ा संकलन : पृ. 132-138 ।

======= xxxxxxx ========